॥२१७॥

॥रामकथा॥

मोरारिबापू

मानस-धरम

अहमदाबाद (गुजरात)

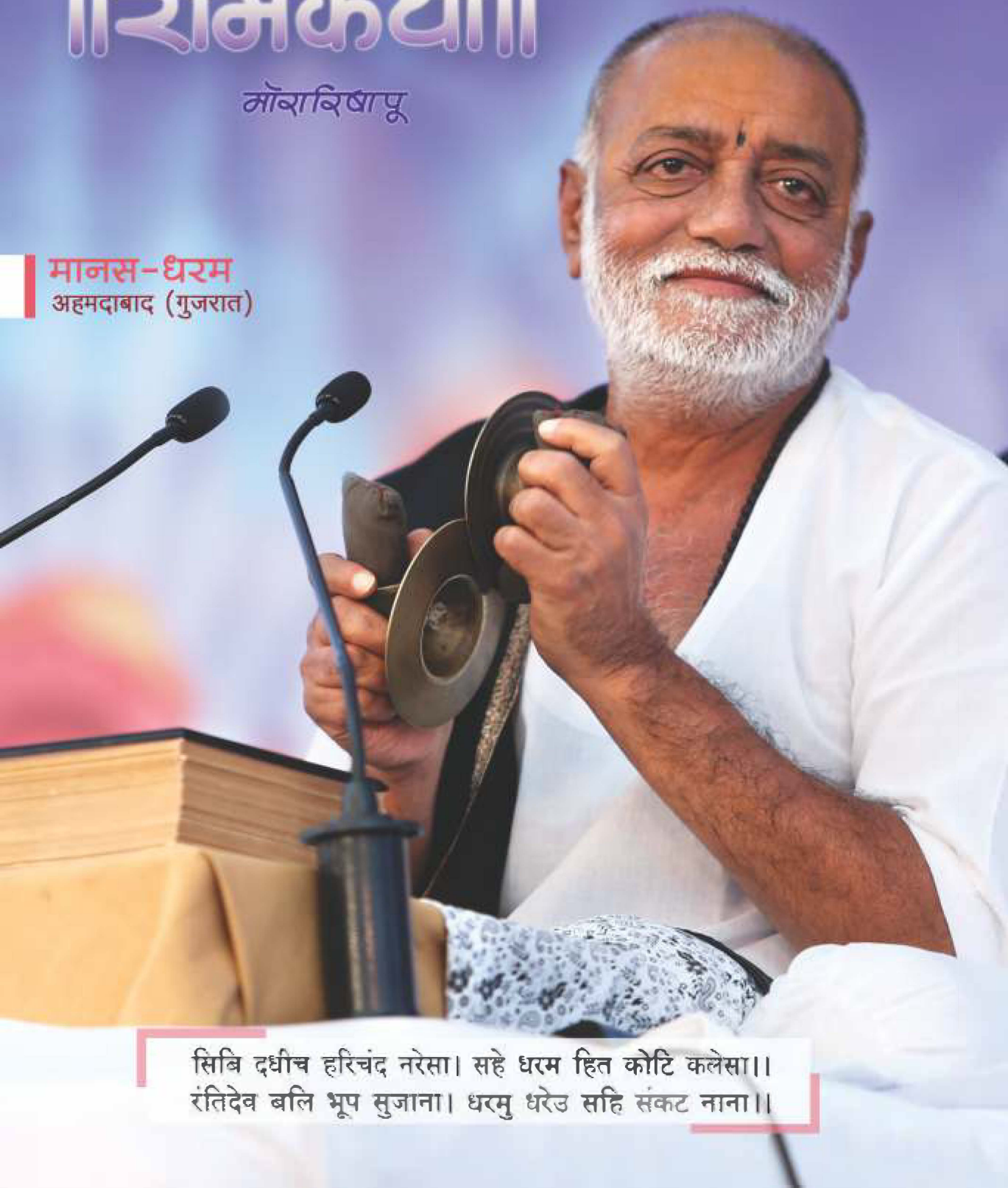

सिबि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना॥

१. हृदय का धर्म वेदना और संवेदना से लबालब होता है।
२. सत्य बौद्धिक नहीं होना चाहिए,सत्य हार्दिक होना चाहिए।
३. जिस धरम में हृदय नहीं होगा वह धरम हिंसा करायेगा।
४. अशुद्ध का स्वीकार कर, शुद्धकर लौटाए वही हृदयधर्म है।
५. अपने विरोधियों के प्रति भी करुणा जगे वही हृदयधर्म है।
६. हमें हृदय का धर्म जीवित रखता हैं।
७. इक्कीसवीं सदी को हृदयधर्म की जरूरत है।
८. राम प्रारब्ध और पुरुषार्थ के सेतु बने हैं।
९. राम का धर्म सत्य है, सीता का धर्म मर्यादा है,भरत का धर्म प्रेम है।

|| **रामकथा** ||
मानस-धरम

मोरारिबापू

अहमदाबाद (गुजरात)

दिनांक : २४-०१-२०१५ से ०१-०२-२०१५

कथा-क्रमांक : ७७०

प्रकाशन :
नवम्बर, २०१५

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

हिन्दी अनुवाद
प्रो. कमल महेता

राम-कथा पुस्तक प्राप्ति
सम्पर्क-सूत्र :
ramkatha9@yahoo.com

ग्राफिक्स
स्वर ॲनिम्स

प्रेम-पियाला

मोरारिबापू ने अहमदाबाद (गुजरात) में ता. २४-१-२०१५ से ता. १-२-२०१५ के दिनों में 'मानस-धरम' विषय पर रामकथा का गायन किया। अहमदाबाद की कीडनी अस्पताल और कीडनी इन्स्टीट्यूट को समर्पित डो. त्रिवेदी साहब के सेवायज्ञ में सहयोगी होने के शुभाशय से बापू ने कीडनी अस्पताल के लाभ हेतु यह कथा कही।

कथा के केन्द्रीय विषय हेतु 'मानस' में से पसंद की कथा की मुख्य चौपाई में आते पौराणिक पात्र शिबि, हरिश्चंद्र, रंतिदेव, बलि और दधीचि ने धर्म हेतु सहन किए संकटों को ध्यान में रखकर बापू ने व्यापक भाव से धर्म के संदर्भ में विशिष्ट दर्शन प्रस्तुत किया।

'मानस-धरम' कथा अंतर्गत हृदय के धर्म को संवेदना का धर्म बताकर बापू ने कहा कि हृदयधर्म माने किसी की पीड़ा देखकर हमारा मन द्रवीभूत हो जाय वह। हृदयधर्म की शाश्वतता की ओर संकेत कर बापू का कहना ऐसा भी रहा कि हृदय तो फेइल हो भी जाय पर हृदय का धर्म शाश्वत है; इसका कोई आदि-अन्त नहीं है।

भरतजी की चित्रकूट यात्रा दौरान हुए संकटों को हृदयधर्म की यात्रा के पांच संकट बताते हुए बापू ने कहा कि हृदयधर्म की यात्रा करते साधक का व्रतभंग हो सकता है; बीच में आता समाज साधक को लेकर गलतफ़हमी भी करे। ऋषिमुनि साधक के त्याग की कसौटी करे; देवता भी विघ्न डाले; और अध्यात्ममार्गी के एकदम निकट के परिवारजन भी उनका विरोध करे या कभी हत्या के भी प्रयत्न करे!

अपनी रामकथा धर्मशाला या धर्मसभा नहीं है, बल्कि एक प्रयोगशाला है, ऐसा कहकर मोरारिबापू ने श्रद्धा का सूर व्यक्त किया कि परमात्मा कृपा से इस प्रयोग में से कुछ निष्पन्न हो; कल नहीं तो परसों होगा। मेरे प्रयत्न प्रामाणिक होंगे, तो परिणाम मिलेगा। कथा को संवाद या बातचीत जैसा सहज रूप देकर बापू ने ऐसा भी कहा कि यह धर्मसभा नहीं है, हृदयसभा है। तो ऐसा संकेत भी दिया कि जो धर्म हृदय गंवा बैठते हैं उसे धर्म कहना या नहीं, वह इक्कीसवीं सदी को सोचना चाहिए!

'मानस-धरम' रामकथा के माध्यम से व्यासपीठ से 'धर्म' की भिन्न-भिन्न अर्थछाया प्रकट हुई और श्रोताओं को विशिष्ट धर्मलाभ हुआ।

– नीतिन वडगामा

हृदय का धर्म वेदना और संवेदना से लबालब होता है

सिबि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा।।
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना।।

बाप, फिर से एक बार अहमदाबाद की रामकथा में गाने का अवसर प्राप्त हुआ है। यह भी एक मंगल दिन पर आरंभ हो रहा है; मंगल हेतु के लिए आरंभ हो रहा है तब सर्वप्रथम रामकथा में हमें आशीर्वाद देने और प्रसन्नता व्यक्त करने पधारे हुए सभी हमारे गुरुजन संतगण, समाज के विधविध क्षेत्र के महानुभवों और रामकथारूपी नौ दिवसीय प्रेमयज्ञ में बिलकुल केन्द्र में जो व्यक्ति है वह आदरणीय त्रिवेदी साहब, बहनजी, त्रिवेदी साहब के साथ सेवायज्ञ से संलग्न सभी भाईयों-बहनों, कीडनी के कारण दर्द से पीड़ित भाईयों-बहनों, तदुपरांत इस कार्य में जिन्होंने अपना सद्भाव समर्पित किया है तन-मन और धन से ऐसे सभी दाताओं के परिवारजन, इस समग्र रामकथा में निमित्त बनकर समर्पित भाईयों-बहनों, जिनके माताजी का संकल्प था ऐसा मुझे बताया गया है; आप सभी मेरे श्रोताजन, सबको व्यासपीठ से प्रणाम।

इस रामकथा का शिवसंकल्प कैसे हुआ ये बातें आदरणीय त्रिवेदी साहब ने संक्षेप में बताई। ऐसी प्रवृत्ति सहज में हंसते-हंसते करते हैं, इसका मैं साक्षी हूं। उन्होंने अपने क्षेत्र में जो शोध की है ऐसी किसीने नहीं की है। वे

कहते हैं, बापू, डर लगता है, विदेशी कहीं चुरा न ले! परमात्मा उनसे बड़ा कार्य करवा रहा है। सूरत में आयोजित उनके सन्मान में मुझे जाने का अवसर मिला। आप और अन्य भी बोले कि साहब का कार्य ही ऐसा है कि उन्हें नोबेल प्राइज़ मिलना चाहिए। तो, हंसते हंसते बोले, 'मैं लूंगा।' तब मैंने कहा था, मैं आपके इस बड़े सेवाकार्य में आप कहेंगे तब रामकथा करूंगा। मैंने प्रसन्नता व्यक्त की थी। मेरे हनुमानजी द्वारा मैंने दिए हुए वचन का पालन हो रहा है, इसका मुझे आनंद है। सार्वजनिक प्रसाद का प्रबंध भी शुरू हुआ है यह मेरे लिए विशेष आनंद है।

अस्पताल के लिए सौ करोड का लक्ष्यांक है। कथा प्रसंग में चालीस करोड निश्चित हो गए हैं। पैसों का सदुपयोग लोगों को खींचता है, ऐसी सेवा-सद्वृत्ति को मेरा नमन है। आप सबको अपील करूं इससे पूर्व त्रिवेदी साहब से कहूं आपके इस यज्ञ में चित्रकूट, तलगाजरडा गांव की ओर से तुलसीपत्र समान प्रसादी स्वरूप केवल सवालाख रूपये स्वीकार कीजिए।

मैं कथा में कौन-सा विषय लूं? साहब ने ऐसा कहा कि सरकार के पास जाय तब कहते हैं हमारे ध्यान में है, धीरे-धीरे होगा। आपकी फाईल कभी मरती नहीं है पर मेरा दर्दी मर जाता है! ऐसे हृदयोद्गार के लिए वे ओलिया कहे जाते हैं और मैं यह पसंद करता हूं।

यहां आकर तय हुआ कि 'मानस-धरम' पर बोलूं। 'मानस' का अर्थ हृदय होता है। सभी धर्म महान है। 'मानस-धरम' माने हृदय का धरम। वास्तव में हम जिसे धरम कहते हैं उससे दु:ख ही मिलता है। कष्ट है, मुसीबतें हैं। पर अधर्म द्वारा जो कष्ट मिले इसके बदले धर्म द्वारा कष्ट मिले यह ईश्वर का आशीर्वाद है। धर्म सेवन में मुसीबत, आफ़त आयेगी। कदम-कदम पर मुश्किलें आयेगी। धर्म सेवन में ऐसा होता है। इसका गवाह जगत का इतिहास है। जिन्होंने मानव जाति के लिए अपना जीवन अर्पण किया ऐसे पांच नाम पुण्यश्लोक है। एक शिबि, जिन्होंने अपने अंग के टूकड़े कर दिए। दधीचि ने देवताओं को हड्डी का दान किया। हरिश्चंद्र ने सत्य के खातिर अपना समूचा शरीर बेचा। रतिदेव के पौराणिक व्याख्यान से हम परिचित है। बलिराज की दानवीरता हम जानते हैं। तुलसी कहते हैं, इन सभी ने धर्म के लिए क्लेश सहन किए।

धर्म के पथ पर चलनेवाले को क्लेश, क्लेश नहीं लगते। पतंजलि ने अपने योगसूत्र में पांच क्लेशों की चर्चा की है। ये क्लेश मुसीबतजन्य हैं। ऐसा हृदय धर्म क्या है? तुलसीदास 'रामचरित मानस' में 'मानस' का अर्थ हृदय-दिल करते हैं। वाल्मीकि, शंकर अनादि कवि है यह कभी भूलना नहीं चाहिए। उन्होंने इस हृदय ग्रन्थ का सर्जन कर कहां रखा?

रचि महेस निज मानस राखा ।
पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ।।

शिवजी ने 'रामचरित' की रचना की। अपने हृदय में रखा। हृदय का धरम योग्य अवसर पर पार्वती के सामने प्रस्तुत किया। फिर क्रमश: यह अपने पास पहुंचा। हृदय का धरम माने संवेदना का धरम। हृदय का धरम माने किसी की पीड़ा देखकर द्रवीभूत होना। त्रिवेदी साहब महसूस करते हैं कि आदमी मरना नहीं चाहिए। बहुत बड़ी प्रेक्टिस छोड़कर यहां आकर सेवाव्रत लेकर बैठे हैं। इस मानव के पास हृदय का धरम है। हृदय तो बंद भी पड़ सकता है पर यह जो हृदय का धरम है, शाश्वत है; सनातन है। इसका आदि-अंत कोई पा नहीं सका है।

भारत के स्वतंत्र होने पर प्रजातंत्र सरकार की रचना हुई। हमारे प्रथम राष्ट्रपति महामहिम एक महान व्यक्ति राजेन्द्रप्रसादजी राष्ट्रपतिभवन में बिराजमान है। वे साधुसंतों का स्वागत करते थे। राजस्थान के जयपुर के एक विद्वान से राष्ट्रपति भवन में गोपीगीत की कथा करवाई। किसीने पूछा, 'भागवत की कथा?' कहा, 'भागवतकथा' है तो क्या हुआ? यह प्रेमगीत है। राष्ट्रपति भवन में प्रेम की चर्चा न हो तो क्या नफ़रत की

चर्चा हो? क्या यहां उपेक्षा के गीत गाये जायेंगे? इस महापुरुष ने रामदरबार के गायकों को राष्ट्रपति भवन में निमंत्रित किए। रामकथा हुई। वहां 'विनयपत्रिका' के पद गाए जाते थे। स्वामी शरणानंदजी प्रज्ञाचक्षु भी निमंत्रित थे। सभी उपस्थित थे। शरणानंदजी तो फकीर थे। गजब के साधु थे! उनसे कहा, स्वामीजी कोई दो वचनामृत सुनाइए। कहा, मुझे प्रवचन देने की आदत नहीं है। आप राष्ट्रपति महोदय, कोई जिज्ञासा प्रकट करे तो उसके आधार पर कुछ बोलूं। राजेन्द्रबाबू ने जिज्ञासा प्रकट की, रास्ता है, मंज़िल है, मन में ऐसा होता है, हमें व्यक्तिगत रूप से राष्ट्ररूप से वहां पहुंचना है फिर भी यात्रा नहीं होती, ऐसा क्यों? भगवन्, हमारी जिज्ञासा का समाधान कीजिए। तब उन्होंने एक ही वाक्य कहा, राजेन्द्रबाबू, रास्ता है, लक्ष्य दिखाई देता है फिर भी यात्रा के लिए पैर नहीं उठते, इसका कारण संवेदना का अभाव है। जिस देश के पास वेद हो पर संवेदना न हो यह क्षुब्धता है। यह धर्मशाला नहीं है, न तो धर्मसभा है। यह मोरारिबापू की प्रयोगशाला है। परमात्मा की कृपा से इस प्रयोग से कुछ निष्पन्न हो। कल नहीं तो परसों कुछ होगा। मेरे प्रयत्न प्रामाणिक होंगे तो परिणाम मिलेगा।

तो बाप, आज से 'मानस-धरम' माने धर्म; तुलसीदासजी प्राय: 'धरम' शब्द प्रयुक्त करते हैं। ग्रामीण भाषा में कहते हैं। 'मानस-धरम' माने हृदय का धर्म माने धड़कता हृदय। वह धड़कता धरम माने वेदना और संवेदना से भरपूर धर्म। 'पीड पराई जाणे रे', ऐसा एक वैष्णव धर्म; नरसिंह महेता का वैष्णव जन का नाद। महात्मा गांधीबापू को याद करूं कि जिन्होंने यह बात जगत के सामने रखी थी।

हमें भजन को छोड़कर कुछ नहीं करना चाहिए। भजन सबसे बड़ी सेवा है। 'भज' धातु सेवा के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। त्रिवेदी साहब माला लेकर कैसे बैठ सकते हैं। यह इनका भजन नहीं है! आपका हृदय धर्म, आपकी संवेदना आपका 'भजन' है। आपने जो कार्य उठाया है, यह आपका भजन है। जिस क्षेत्र में जो मानव दूसरों के प्रति संवेदना का अनुभव करे ये सभी भजन के क्षेत्र है। यह मेरा प्रमाणपत्र नहीं है। मुझमें ऐसी काबिलियत भी नहीं है। मैं प्रसन्न होता हूं तब प्रेमपत्र देता हूं। मैं कथा कहूं, आप सुनते रहे यह भजन का क्षेत्र है।

प्रथम भगति संत कर संगा।
दुसरी रति मम कथा प्रसंगा।।

ये ऋषिकुमार वेदमंत्र बोलते हो; भागवत विद्यापीठ हो या अन्य कोई हो, यह भजन है साहब! पूरी भक्त परंपरा में पुनित महाराजश्री से लेकर उनसे पूर्व भी जो कीर्तन और व्याख्यान है ये भी भजन है, साहब! भजन माने एक रूप में ही नहीं; फिर आप माला और तिलक की टीका करने लग जाओ! हा, माला की महिमा है। 'भागवत' तो आपके श्रवण से ही भजन की शुरूआत करता है। किसी भगवत् गुण का वर्णन करे यह भक्ति है, ये भजन के क्षेत्र है। हर एक का अपना-अपना भजन होता है। इसीसे इस प्रेमयज्ञ में हृदय के धर्म को, हृदय की संवेदना को केन्द्र में रखकर बातें करनी है।

ऊर्ध्वगमन और विश्राम की यह यात्रा है। आखिर में 'रामचरित' में 'पायो परम विश्राम' में तृप्ति तक पहुंचाने का यह एक प्रेमशास्त्र है। प्रथम सोपान को वाल्मीकि 'बालकांड' कहते हैं। दूसरा 'अयोध्याकांड', तीसरा 'अरण्यकांड', चौथा 'किष्किन्धाकांड', पांचवां 'सुन्दरकांड', छठ्ठा 'लंकाकांड' और सातवां 'उत्तरकांड' है। तुलसी सोपान कहते हैं। ऐसी यह सात सोपान की सीढ़ी है। 'बालकांड' के आरंभ में तुलसीदासजी ने सात मंगलाचरण के श्लोक दिए हैं। यह शास्त्र गेय है। यह गाने का शास्त्र है। तुलसी तो कहते हैं -

गावत संतत संभु भवानी।

शिव और पार्वती गाते हैं। कागभुशुंडि और गरुड गाते हैं। यह शास्त्र सात सूरों का है। मानव को गाना आ जाय तो युद्ध बंद हो जाय, संघर्ष थम जाय। सूरीला हिंसा नहीं कर सकता। प्रज्ञाचक्षु सूरदास अच्छे

गायक थे। धृतराष्ट्र ने हार्मोनियम पकड़ा होता तो युद्ध बंद हो जाता! उसने सूर न पकड़ा! शस्त्र के बदले सूर पकड़ा होता तो समरांगण न होता।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

सात मंत्रो में, अंत में स्वान्त:सुख कहकर इस शास्त्र का मुख्य हेतु बताया है। मेरे अन्त:करण के सुख के लिए मैं यह कथा गा रहा हूं। फिर श्लोक को बिलकुल लोक पर उतारा। लोगों तक पहुंचने के लिए उन्होंने ग्राम्यगिरा का आश्रय लिया। कथा के आरंभ में ग्राम्य भाषा में पांच सोरठें कहे -

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन।।
मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन।।

फिर गणेश का स्मरण किया। गणेश माने विवेक। अपने यहां सत्संग द्वारा, शास्त्र द्वारा, अच्छे आदमी से सत्संग द्वारा या किसी गुरु द्वारा प्राप्य विवेक की स्मृति गणेशवंदना है। फिर भगवान सूर्य की वंदना की। सूर्यपूजा यह प्रकाश में जीने का संकल्प है। विष्णुजी की वंदना की। विष्णु माने व्यापकता, विशालता, औदार्य। शिववंदना माने विश्वकल्याण की वंदना। सबका शुभ और मंगल हो।

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया।

यह भावना रुद्राभिषेक है। दुर्गापूजा माने अटल श्रद्धा। वैष्णव परंपरा में कहा गया -

दृढ इन चरनन केरो भरोसो,
दृढ इन चरनन केरो,
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिन,
सब जग मांहे अंधेरो ...

जगद्गुरु शंकराचार्य ने पांच देवों की पूजा सिखाई है। 'मानस' का प्रथम प्रकरण गुरुवंदना है। गुरुमहिमा है। पूर्ण निजता हो तो गुरु की आवश्यकता नहीं रहती बाकी मोरारिबापू को गुरु की जरूरत पड़ती है। हमें कोई मार्गदर्शक चाहिए। अंधेरे से उजाले की ओर जाने में हमें प्रेरकबल चाहिए। जिसने गुरुपद की स्वीकृति दी है उन्हें अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं। गुरु का गणवेश नहीं होता। ऐसे उच्चपद को किसी विशेषण की जरूरत नहीं है। उनकी वृत्ति कार्यरत रहती है। वस्त्र चाहे कुछ भी हो; दिगम्बर या श्वेतांबर हो; पेन्ट में हो तो भी कोई आपत्ति नहीं है।

गुरु गार्गी तत्त्व है। गुरु गार्गी होना चाहिए। यह मेरी व्याख्या है। मुझे लड़कों ने कहा, थोड़ा अंग्रेजी में कहिए। मैंने कहा, गुरु टार्गी होना चाहिए। आपको लक्ष्य बताए। गुरु मार्गी होना चाहिए। मार्गी अर्थात् जितने सत्य के पथ पर चले हैं, जिन्होंने पथ पा लिया है; पथिक है, यात्री है, यात्रा पर निकले हैं। आचरण करता, गतिशील होना चाहिए।

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर।।
बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

किसी भी काम का आरंभ कीजिए, जिस बुद्धपुरुष में निष्ठा रखिए ऐसे बुद्धपुरुष का स्मरण कर निकलिए। गणपति जैसा कोई गुरु नहीं है। शिष्य से भूल हो तो भी सच्चा गुरु नाराज नहीं होता। अध्यात्म-जगत में गुरु की बुद्धपुरुष की चरणधूलि जिसे चूर्ण कहा है, यह जगत के सभी रोगों की औषधि है। इस सत्य को मोरारिबापू मजबूती से पकड़ते हैं। मैं मानता हूं, बुद्धपुरुष की चरणधूलि विश्व के सभी मानसिक रोगों की संजीवनी है। अटल श्रद्धा हो तो कुछेक रोगों की संजीवनी भी है। अंधश्रद्धा रखकर डिबियां में चरणधूलि मत भरिए। डोक्टर की दवाई की जरूरत पड़े तो लीजिए। पर शरणागति अनुपान है। एक छोटा-सा वाक्य, कविता या लेख भी गुरु हो सकता है। ऐसे गुरुतत्त्व की वंदना की। प्रथम प्रकरण गुरुवंदना का है। फिर चरणधूलि की कृपा से दृष्टि ब्रह्ममय हुई। पूरा जगत ब्रह्ममय दिखने लगा।

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

माँ कौशल्या, दशरथजी, जनकजी, भरतजी, शत्रुघ्नजी, लक्ष्मणजी की वंदना की। सब की वंदना करते-करते 'दृष्टि ब्रह्ममय कृत्वा।' कैसर का बहुत प्रसिद्ध शे'र है -

किसको पत्थर फेंके केसर, कौन पराया है।
शिशमहल में हर एक चेहरा मुझ-सा लगता है।

हम दूसरों की निंदा करे तो समझना चाहिए अभी अपनी दृष्टि पवित्र नहीं हुई है। यह एक प्रमाणपत्र है। शे'र सुनिए -

अच्छे ने अच्छा बुरे ने बुरा जाना मुझे।
जिसको जितनी जरुरत थी इतना पहचाना मुझे।

यह विधिप्रपंच है। मात्रा भेद से मंगल-अमंगल है।

सकल लोकमां सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे;
वाच-काछ-मन निश्चल राखे, धन्यधन्य जननी तेनी रे.
- नरसिंह महेता

तुलसी सबकी वंदना करते-करते 'विनयपत्रिका' में हनुमानजी की वंदना करते हैं -

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।
पवनतनय संतन-हितकारी।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।

गोस्वामीजी ने क्रम में श्री हनुमानजी महाराज की वंदना की। हनुमानजी सार्वभौम तत्त्व है। वे पवनपुत्र है। सब को श्वास की जरूरत पड़ती है। श्वास हिन्दु-मुसलमान नहीं है। श्वास, श्वास है। हनुमंत पवनपुत्र है। वे सर्वग्राह्य परमतत्त्व है। हनुमानजी सबके हैं। कोई भी व्यक्ति हनुमंतवंदना कर सकता है। 'रामचरित मानस' में स्पष्ट लिखा है कि हनुमानजी, सीताजी को समाचार देने अशोवाटिका में गए तब लंका की निशिचरी राक्षसियां आई और हनुमानजी की पूजा करती है। तो, लंका की राक्षसियों को हनुमंतपूजा का अधिकार हो तो मेरे देश की बहनों, पुत्रियों को क्यों न हो? मातृशक्ति में यह होना ही चाहिए।

श्री हनुमानजी महाराज की वंदना की फिर सखाओं की, सुग्रीव, जामवंत सबकी। 'मानस' के सभी पात्रों की वंदना की। फिर सीता-रामजी की वंदना की। जो परमतत्त्व है। फिर तुलसीजी ने रामनाम की वंदना कर प्रभु-नाम की महिमा गुणांक में गाई है।

जो आनंद संत फकीर करे,
ए आनंद नाही अमीरी में।

इन क्षेत्रों के प्रमुख पुरुष को हंसते रहना चाहिए। इस देश में धर्मपुरुष, धर्मगुरु हंसता रहना चाहिए। इस देश का नेता हंसता हुआ होना चाहिए। इस देश का गुरु, मित्र, शिक्षक सब हंसते हुए रहने चाहिए।

हृदय का धर्म माने संवेदना का धर्म। हृदय का धर्म माने किसी की पीड़ा देखकर हमारा मन द्रवीभूत हो जाय। त्रिवेदी साहब को लगे, मानव मरना नहीं चाहिए। बहुत बड़ी प्रैक्टिस छोड़कर यह मानव यहां सेवाव्रत लेकर बैठा है। मुझे लगता है, उनके पास हृदय का धरम है। हृदय फेइल हो सकता है पर जो हृदय का धरम है वह शाश्वत है, सनातन है। इसके आदि-अंत को कोई नहीं पा सकता। 'मानस-धरम' माने हृदय का धरम माने धड़कता हृदय। यह धड़कता धर्म माने वेदना और संवेदना से लबालब धर्म। 'पीड़ पराई जाणे रे', ऐसा एक वैष्णव धर्म; नरसिंह महेता का वैष्णवजन नाद।

सत्य बौद्धिक नहीं होना चाहिए, सत्य हार्दिक होना चाहिए

हम सब खुश हो जाय ऐसे समाचार मिले कि हमारे आदरणीय वरिष्ठजन त्रिवेदी साहब ने मुझसे कहा कि भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री का सन्मान समर्पित कर उनके कार्य को लक्ष्य में लेकर अर्घ्य ज़ाहिर किया है। व्यासपीठ की ओर से बधाई-वंदन। मैं अपनी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। जलन मातरी का एक शे'र है -

हजी तो दुश्मनो आव्या छे फक्त बे-चार संख्यामां,
भला शी खातरी के ए पछी लश्कर नहीं आवे ?

उन्होंने अलग संदर्भ में लिखा है। पर अभी तो पद्मश्री से शुरूआत हुई है। देवताओं को फूलों की आवश्यकता कहां होती है ? पर हम फूल समर्पित करते हैं। पुन: बधाई और मैं अपनी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं।

'मानस-धरम' माने मानसधर्म, हृदय का धर्म। 'मानस' में धर्म की विधविध परिभाषाएं दी गई है। कभी तुलसी कहते हैं यह वस्तु धर्म है, तो कभी वह वस्तु धर्म है। तब हमें मूल ऋषियों का वह सूत्र सहज याद आता है कि

एक ही सत्य को अनेक एन्गल से देखने की हमारी मनीषा रहती है। अपने ऋषिमुनियों का सहज स्वभाव है। स्मृति में आए इतनी मैं धर्म की व्याख्या पेश करूं तो इस कथा में केन्द्रीय धरम, हृदय धरम की बात है। हमें हृदय के आकार की खबर है। उस में मूल पांच वस्तु कौन-सी है, उसके आधार पर मुझे आप-से बातें करनी है। हृदयधर्म की मूल पांच वस्तु कौन-सी है ? कवि दाद ने कविता लिखी है -

जीव, तुं थाजे टपालनो थेलो.

तू डाक का थैला होना। उसमें ब्याह की कुमकुम पत्रिका भी होगी और किसी की मृत्यु चिठ्ठी भी होगी। पर थैला कुछ नहीं जानता ! कासद का काम संदेश देने का है। डाक डालकर आगे चलना है। क्या है यह वह जाने ! डाकिये के डाक के थैले का रंग वही है जो पुलीस के कपड़े का है। पुलिस का काम आदेश देने का है। उपदेश देने का काम संन्यासियों का है। अमुक उपनिषद में आपको ऐसा भी मिलेगा 'एष: आदेश:।' यह आदेश है। वे आदेश भी दे सकते हैं। मैं कुछ भी नहीं कर सकता। ऐसा संदेश दे नहीं सकता कि मैं तुलसी को इस तरह से समझा हूं। ये बातें मैं आपसे कर सकता हूं। मैं उपदेश नहीं दे सकता। उपदेश तो महापुरुष भगवंत देते हैं। इन तीनों से बचने का कारण यह भी है कि इन तीनों को कुत्ते काटने को दौड़ते हैं ! कुत्ते औरों से अच्छे हैं ! आप दुनिया को संदेश देने निकले तो आपको भौंकनेवाले तत्त्व मिलेंगे। काटनेवाले भी मिलेंगे। आपकी पींडी फाड़ देने वाले मिलेंगे। कुत्ता पींडी को ही काटे क्योंकि वह साधक के उर्ध्वगमन को देख नहीं पाते; उनकी हैसियत नहीं। दौड़ेगा और थक जायेगा। कितना दौड़े ? थक कर जीभ लपलपाता है ! उससे बड़ी शिक्षा मिलती है। नरसिंह महेता याद आते हैं -

एवा रे अमे एवा रे एवा, तमे कहो छो वळी तेवा रे;
भक्ति करतां भ्रष्ट कहेशो, तो करशुं दामोदरनी सेवा रे.

आदेश देने में भी तकलीफ़ है। आप आदेश-हुकम दीजिए तो आपके प्रति लोगों को सद्भाव नहीं रहेगा। आदेश सविनय होना चाहिए। कहीं सख्त होना जरूरी है। आदेश सविनय हो तो लोग हंसते-हंसते काम करेंगे। आप सख्त होकर आदेश देंगे तो वह काम तो करेगा पर अंदर का जोश नहीं होगा। अत: आलोचना होने की संभावना रहती है। तीसरा उपदेश; हम क्या उपदेश दे ? कथाकारों के लिए तो कहा जाता है पोथी के कीड़े ! भगवतीकुमार शर्मा याद आते हैं। गुजराती साहित्य परिषद के प्रमुख थे। अस्सी वर्षीय है। उनकी कविता है।

हरि, मने अढी अक्षर शिखवाडो !
अेंशीने आरे आव्यो छुं;
मारो अगर जिवाडो !

मुझे भाव-प्रेम का शिक्षण चाहिए। मुझे हृदयधर्म सिखाइए।

पोथी पंडित बनी रींगणां
पोथीमां ज वधार्यां,
शब्दब्रह्मनां करी चूंथणां
सारतत्त्व संहार्यां.
गरबड करी गनाने, ग्रंथनो भार तमे उपाडो !
हरि, मने अढी अक्षर शिखवाडो !

हम क्या संदेश दे ? क्या आदेश दे ? क्या उपदेश दे सके ? हैसियत क्या है ? हम बातें कर सकते हैं। उपनिषद ने भी यही कार्य किया है। गुरु-बुद्धपुरुष के निकट बैठकर सीखने के लिए उत्सुक समिधपाणि शरण में आया वह आश्रित इन दोनों के बीच हुए संवाद को उपनिषद कहते हैं। 'उप' का अर्थ संस्कृत में निकट होता

है। मर्यादा में रहकर जितना हो सके उतना निकट बैठे किसी बौद्धपुरुष के पास, जागरूक के पास, किसी भजनानंदी के पास। मेरी दृष्टि से भजनानंदी का अर्थ है जिसके हृदय में बहुत प्रेम भरा हो। जिनकी आंखों में विकार न हो, जो उपासना युक्त हो। जीभ नहीं पर जिनका जप बोलता हो। समझना कि यह प्रज्वलित दीया है जिनके कदमों में शास्त्र का स्वाभाविक गुरुदत्त, माँ-बापदत्त, खानदानीगत आचरण हो। ऐसे बुद्धपुरुष के निकट बैठकर बातचीत करनी चाहिए।

यहां व्यासपीठ मेरी-आपकी गुरु है। 'रामचरित मानस' भी हमारा गुरु है। मैं घोषणा करता हूं, मैं किसीका गुरु नहीं हूं। मेरा कोई शिष्य नहीं है, क्योंकि मैं किसी का गुरु नहीं हूं। मेरे हजारों की संख्या में श्रोता है, जो व्यासपीठ को ध्यान से सुनते हैं। मजबूर साहब का सीधा-सादा शे'र है -

ना कोई गुरु ना कोई चेला।
मेले में अकेला अकेले में मेला।

साधु कौन है? मेले में हो तो भी अकेला लगे। जब अकेला हो तब उसके पास परम स्मृति की भीड़ जमा होती है। जिसे आप आदर देते हैं। आपको आपका गुरु घेर लेता है। फिल्म में आया कृष्णस्मरण का कीर्तन। वृंदावन का द्वार, कदंब, कालिंदी हो और आंखें मथुरा को तकती हो कि 'आयेगा, आयेगा।' फिर मानो गोपी बोलती हो, भक्त बोलता हो -

आधा है चंद्रमाँ रात आधी,
रह न जाये तेरी मेरी बात आधी, मुलाकात आधी।

मैंने साधुओं को बिगाड़ना शुरू किया है! दूध में छाछ डाले तो दही होगा। उसे मथना होगा। 'उत्तरकांड' के ज्ञानदीप का प्राकट्य होगा। फिर मोहरूप अंधकार इधर-उधर भाग जायगा। 'आतम अनुभव सुख सो प्रकासा।' ऐसी एक ज्योति का प्राकट्य होगा। यह तो कीर्तन है, अर्वाचीन गोपीगीत है।

लो आ गई उनकी याद, वो नहीं आये...

ये भक्त के हृदय की पुकार नहीं तो क्या है? मैं बीच-बीच में फिल्म की पंक्ति गाता हूं वह मेरा आनंद है। शायद कईयों को यह पसंद न हो! धार्मिक जगत में इसकी टीका भी होती हो! मैं कैसे समझाऊं कि मेरी एक अवस्था है। इस अवस्था के कारण गुरुकृपा से ये सारी चीज़ें मुझे पकड़ती है। मैं क्या करूं? कहां जाऊं? कविता पकड़ती है, गज़ल, उर्दू का शे'र पकड़ लेता है। कोई साहित्यकार बात करते हो उनकी छोटी-सी बात पकड़ लेती है। सब रिसिव होता है। मैं कहां जाऊं? साहब, उनकी स्मृति आपको घेर लेती है। जीवन का यही परमानंद है। साहब, परमानंद आंसू की ही पदवी है।

प्रत्येक व्यक्ति को, खास कर साधक को भीड़ में अपना एकान्त तय करना पड़ता है। अत: जगद्गुरु शंकराचार्य कहते हैं, 'एकान्ते सुखमास्यताम्।' एकान्त में तू बैठ। मेरा कोई शिष्य नहीं, मैं किसी का गुरु नहीं। मैं जिसका आश्रित हूं मेरे दादा का, इसका निर्वाह योग सभी कर सकूं तो जीवन सफल हो जाय। यहां से धर्म-प्रसंग संबंधी जो कुछ कहा जाय उसे उपदेश मत समझिए। यह मेरा आदेश नहीं है और संदेश देने की मेरी हैसियत नहीं है।

'मानस-धरम' माने हृदय का धर्म। हृदय के कौन से पांच छोटे-छोटे अंग है, कार्यक्षेत्र क्या है, यह पक्का करने के बाद कहूंगा। तुलसीदासजी ने 'रामचरित मानस' में धर्म की व्याख्या की है, जो सनातन है, आदि-अनादि व्याख्या है, उसे चौपाई में उतारी है कि सत्य जैसा कोई दूसरा धर्म नहीं है। जिसके पास सत्य है वही सत्य श्रेष्ठधर्म है।

धरमु न दूसर सत्य समाना।
आगम निगम पुरान बखाना।।

रात्रि भोजन के समय मैं लड़कों को कह रहा था कि कालांतर में धर्म की परिभाषा बदलती रहती है पर सत्य, प्रेम, करुणा गुरुकृपा से धर्म बने हैं, उन्हें आप बदल नहीं सकते। त्रिकाल में सत्य शाश्वत रहेगा सूर्य की तरह। पर यह सौरमंडल का सूर्य अरबों वर्षो के बाद खतम हो जायेगा। उसमें परिवर्तन आयेगा पर सत्य खत्म नहीं होगा। पर अभी तो सत्य को सनातन कहने के लिए अपने पास सूर्य के सिवा और कोई उपाय नहीं है। तो, सत्य जैसा दूसरा कोई धर्म नहीं है। कौन-सा धर्म इस सूत्र का इन्कार कर सके? सत्य-धर्म का आचरण भले न कर सके पर मानना तो पड़ेगा ही। गांधीजी ने शुरूआत की थी कि परमात्मा सत्य है; फिर उन्होंने परिवर्तन किया, सत्य ही परमात्मा है। ज्यों जिसस कहते हैं कि परमात्मा प्रेम है, फिर परिवर्तन करते हैं कि प्रेम ही परमात्मा है। बुद्ध आत्मा-परमात्मा की बात नहीं करते यह अलग बात है। बुद्ध को प्रणाम कर कहना चाहे तो कह सकते हैं, परमात्मा करुणा है यों नहीं पर करुणा ही परमात्मा है। थोड़ा कठिन पड़ेगा।

तुलसी ने कहा है कि 'रामायण' 'सत कोटि अपारा' और यह तुलसी ही कहे ऐसा नहीं पर विश्वामित्रजी ने रामरक्षास्तोत्र में लिखा, 'चरितं

रघुनाथस्य सत कोटि प्रविस्तरम्।' सौ करोड मंत्रों में 'रामायण' अथवा तो सबकी अपनी अपनी 'रामायण' होती है। सबको माता की प्रेरणा से, ईश्वर की प्रेरणा से अपने-अपने भाष्य होते हैं। सबको अपना एक राम होता है। सबको अपना-अपना एक पात्र होता है। तो हर एक का अपना-अपना 'रामायण' है। इस सत्य का स्वीकार होना चाहिए। जहां से भी सत्य मिले, मैं उसके नाम के साथ प्रस्तुत कर दूं। जैसे तुकाराम के शब्दों में हम प्रज्ञाचोर हो गए हैं! हम दूसरों के विचार अपने कर लेते हैं! साधु वह है जो मधुकर की भाँति जहां-जहां से शुभतत्त्व मिले एकत्र कर ले। इसीलिए एक ही बात को अनेक रीति से कह सकते हैं। 'एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।' धर्म को एक एन्गल से देखा तब कहा गया -

धरमु न दूसर सत्य समाना।
आगम निगम पुरान बखाना।।

हृदय धर्म की बात चल रही है तब सत्य बौद्धिक नहीं होना चाहिए, सत्य हार्दिक होना चाहिए। कई बार लोग बौद्धिकता के कारण सत्य के साथ खेल खेलते हैं! ऋषि की बात से मैं सहमत हूं या नहीं ऐसी मेरी हैसियत नहीं पर मुझे मेरी निजता रखनी चाहिए। मैं इसका अधिकारी हूं। यह मेरा स्वभाव है। ऋषि के आश्रम में गाय छिप गई या कोई हिरन छिप गया। शिकारी उसके पीछे दौड़ा। पता चला कि आश्रम में आश्रय लिया है। वह ऋषि से कहता है यह मेरी खुराक है, इसे लौटा दीजिए। ऋषि ऐसा कहे, गाय आश्रम में नहीं है, तो असत्य है। यदि कहे कि है, तो शिकारी उसे मार डाले! गौ हत्या लगे। ऋषि को क्या करना चाहिए? अब बौद्धिक सत्य का उपयोग हुआ कि मेरी आंख ने गाय देखी है पर आंख को जीभ नहीं है तो बेचारी कैसे बोले? मेरी जीभ बोल सके पर उसे आंख नहीं है अत: बिन देखे कैसे बोले? यह

तलगाजरडी आंख से बौद्धिक सत्य है। क्या सत्य इतना कमजोर है कि आपको ऐसे खेल करने पड़े?

मुझे आपके साथ हृदय के धरम की बात करनी है। भरद्वाज के आश्रम में याज्ञवल्क्य आए। उन्होंने तात्त्विक जिज्ञासा की कि रामतत्त्व क्या है? वे दशरथपुत्र है या अनादि, अजन्मा परमतत्त्व है, कौन-से राम है? फिर एक शब्द कहते हैं -

प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।

सत्यधाम, आप जो कहेंगे वह सच ही होगा। मुझे पूरा भरोसा है।

सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि।।

मतलब, हृदय के विवेक से आप मुझे हार्दिक सत्य कहना, बौद्धिक सत्य नहीं। सत्य जैसा और कोई दूसरा धर्म नहीं है। 'रामचरित मानस' में एक व्याख्या है। दूसरी व्याख्या -

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना।
सेवा धरम कठिन जग जाना।।

वेद, शास्त्र, पुराण सब में प्रसिद्ध है कि सेवा जैसा दूसरा धर्म नहीं है। यह धरम की दूसरी परिभाषा है। त्रिवेदी साहब जो कर रहे हैं वह सेवा धर्म है। पेशन्ट आकर बौद्धिक सत्य कहता होगा कि साहब, हमारे पास कुछ भी नहीं है; या ऐसा कहते होंगे कि जो कुछ हो फ्री कर दीजिए। तुलसीदासजी ने सबसे कठिन धर्म सेवाधर्म बताया है। गहनधर्म है। इस सेवा यज्ञ में सभी दान देते हैं तो देंगे ही। कलियुग में दान को कल्याणकारी कहा है। जो दान देते हैं यह बहुत बड़ा धर्म है, अच्छी वस्तु है। पर सेवाकार्य कठिन है।

साधु को भजन के बदले विकास नहीं करना है। आप अकेले बैठकर किसी के लिए शुभचिंतन करे यह भी सेवा है। रमण महर्षि समाज में आए ही नहीं थे। पत्रकार कहते थे, आपको समाज में नेत्रयज्ञ करने चाहिए; ये सब करना चाहिए। पर सबके सेवाक्षेत्र अलग है। जो कोई सद्प्रवृत्ति करते हैं उन सबका कठिन धर्म सेवा है। 'रामचरित मानस' में धर्म की तीसरी व्याख्या, 'धरम न दया सरिस हरि जाना।' कागभुशुंडिजी का वक्तव्य है कि हे गरुड, दया जैसा कोई धरम नहीं। हम कुछ न कर सके पर कम अज कम दया प्रकट हो, करुणा भाव प्रकट हो, इससे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। 'मानस' में एक दूसरी धरम की व्याख्या आई -

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा।
पर निंदा सम अघ न गरिसा।।

अहिंसा जैसा कोई धर्म नहीं है। जैन समाज ने एकदम यह वस्तु ग्रहण कर ली। ये सबके लिए लागू होती बात है। जीव हिंसा न हो यह बहुत बड़ा मंत्र है। मन-वचन-कर्म से भी किसी को पीड़ा न पहुंचे वही अहिंसा है। शास्त्रों में हिंसा के अनेक प्रकार बताए हैं। कई हिंसा कार्य की होती है, जो स्वयं करता है। कई हिंसा सांकेतिक होती है, जो दूसरों से करवाता है। कई हिंसा मानसिक रूप से होती है कि इसका खराब हो, इसकी प्रगति न हो। ऐसे कई प्रकार है। बाप, 'मानस' कहता है अहिंसा परमधर्म है।

तो, 'रामचरित मानस' में लिखा है कि मन-वचन-कर्म से किसीका दिल न दुभाना परमधर्म है। शस्त्र से तो नहीं पर शब्द से भी किसी के दिल को ठेस मत पहुंचाना। साहब, गांधीबापू ने दुनिया को करके दिखाया। हिंसा का उपयोग नहीं किया -

दे दी हमें आज़ादी बिना खडग, बिना ढाल,
साबरमती के संत तुने कर दिया कमाल।

हिंसा इतनी शक्तिशाली हो तो अहिंसा कितनी शक्तिशाली हो सकती है! पर कहीं भरोसे की कमी नजर आती है। पतंजलि ने अपने योगसूत्र में लिखा है, 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्याग:।' अहिंसा ऐसी वस्तु है, इतनी बड़ी प्रतिष्ठा है कि इसको अपनानेवाला जन्मजात बैर छोड़ दे। अत: ऋषि के आश्रम में हाथी और सिंह एक साथ बैठते थे क्योंकि ऋषि अहिंसक थे।

भगवान महावीर स्वामी के लिए ऐसा कहा जाता है कि गौतम बुद्ध और जगद्गुरु के लिए ऐसा कहा जाता है कि जब वे विहार कर रहे थे तब एक योजन माने आठ मिल तक हिंसक प्राणी अपनी खुराक पर नहीं टूट सकते थे, क्योंकि महावीर-बुद्ध-शंकराचार्य बाहर निकले हैं। जगद्गुरु आदि शंकराचार्य बत्रीस वर्षीय युवा लड़का; अवतार के सिवा यह कार्य हो ही नहीं सकता। यह अकस्मात नहीं था, वह अस्तित्व की व्यवस्था थी। बत्तीस वर्ष की आयु में इन्होंने अद्भुत कार्य किए। इनके लिए ऐसा कहा जाता है कि वे जब निकलते थे तब एक-एक योजन में वृक्ष, नदियां सभी वेद की ऋचाएं बोलते थे!

अहिंसा जैसा कोई धर्म नहीं है। तुलसी ने लिखा है, दूसरों की निंदा करने जैसा और कोई पाप नहीं है। युवा भाईयों-बहनों, संभव हो वहां तक दूसरों की निंदा से बचिए। तो, सत्य, दया, सेवा, अहिंसा ये कठिन-परम धर्म है। तुलसी धर्म की व्याख्या देते हैं -

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

हमें अपनी मर्यादा में रहकर दूसरों का भला करना चाहिए। इस जैसा कोई धर्म नहीं है। अपनी क्षमता अनुसार करना चाहिए। ये सभी सर्वकालीन सीधे-सादे सूत्र हैं। ये सभी थोड़ी मानसिक बीमारियों को कम करने की औषधियां है। कोई किसी की निंदा करता हो तब विषयांतर कर देना चाहिए। या बहाना बनाकर वहां से चल देना चाहिए। 'रामायण' में लिखा है, जिसमें दुष्टता भरी हो उनसे दूर रहना चाहिए। उपेक्षा नहीं करनी है पर एक डिस्टन्स रखना है। मेरा ऐसा मानना है कि जिसका बिना निंदा का दिन और रात बिना सपनों की निकल जाए तो समझना कि गुरुकृपा से विवेकशील हो चुका है। ये साधकों के प्रमाण है।

लोगों को कलियुग में सत्संग की बड़ी रुचि जगी है। अत: सत्य, प्रेम, करुणा का जन्म हुआ है। लोग बहुत उदार है। पचपनसाल पहले मेरी कथा में इक्कीस आदमी रहते थे। उनमें से आधे सो जाते थे! आरती के समय जगाने पड़े! यजमान जो कथा का आयोजन करते थे वे तो सुनते ही नहीं थे! पिछले तीस बरसों से यजमान सपरिवार कथा सुनते हैं। पहले यजमान व्यवस्था में ही व्यस्त रहते थे! आज इतने लोग क्यों कथा सुनते हैं? तर्क नहीं, अध्यात्म भूख जगी है। शांति से कथा होती है, लोकसाहित्य होता है। लोग श्रवण करने आते हैं।

मैं बीचबीच में फिल्म की पंक्ति गाता हूं यह मेरा आनंद है। शायद कईयों को यह पसंद नहीं आता होगा। धार्मिक जगत में इसकी टीका होती है। अब कम हुई है। मैं कैसे समझाऊं कि मेरी एक अवस्था है। गुरुकृपा से इसी अवस्था के कारण वे सभी वस्तु मुझे पकड़ती है। मैं क्या करूं? कहां जाऊं? एक कविता, गज़ल, उर्दू का शे'र मुझे पकड़ लेते हैं। कोई साहित्यकार बातें करें तो कोई एक छोटी-सी बात मुझे पकड़ लेती है। सब रिसिव होता है। मैं कहां जाऊं?

जिस धरम में हृदय नहीं होगा वह धरम हिंसा करायेगा

आज अपने देश का गणतंत्र दिन है। इस अवसर पर आप सबको समग्र राष्ट्र को, जहां-जहां भारतीय निवास करते हैं सबको बहुत-बहुत बधाई, शुभकामनाएं। अपना देश आज प्रजासत्ताक दिन की खुशी मना रहा है तब विश्ववंद्य पूज्य गांधीबापू से लेकर इस महान कार्य में जिन्होंने बलिदान दिए उन सभी शहीदों को मेरा प्रणाम। कल रात को विशेष समाचार भी प्रसारित होते रहे उसमें समग्र देश में से जिन्हें पद्मविभूषण, पद्मभूषण, पद्मश्री की उपाधि उनकी विशिष्ट सेवा प्रदान की दृष्टि से ईनायत हुए उन सबको बहुत-बहुत बधाई। मैं व्यासपीठ से अपनी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं।

नौ दिवसीय कथाकेन्द्र में 'मानस-धरम' विचार है। 'मानस' को केन्द्र में रखकर इस विचार पर मनीषियों से श्रवण किया हो, मेरी पात्रता अनुसार पढ़ा हो, विचार किया हो और सबसे उपर तो मेरे सद्गुरु भगवान की कृपा से मुझे जो कुछ प्राप्त है, अनुभव किया है, ऐसी बातें मैं आपसे शेर करता हूं। पुनः कहता हूं यह बातचीत है, संवाद है; यह

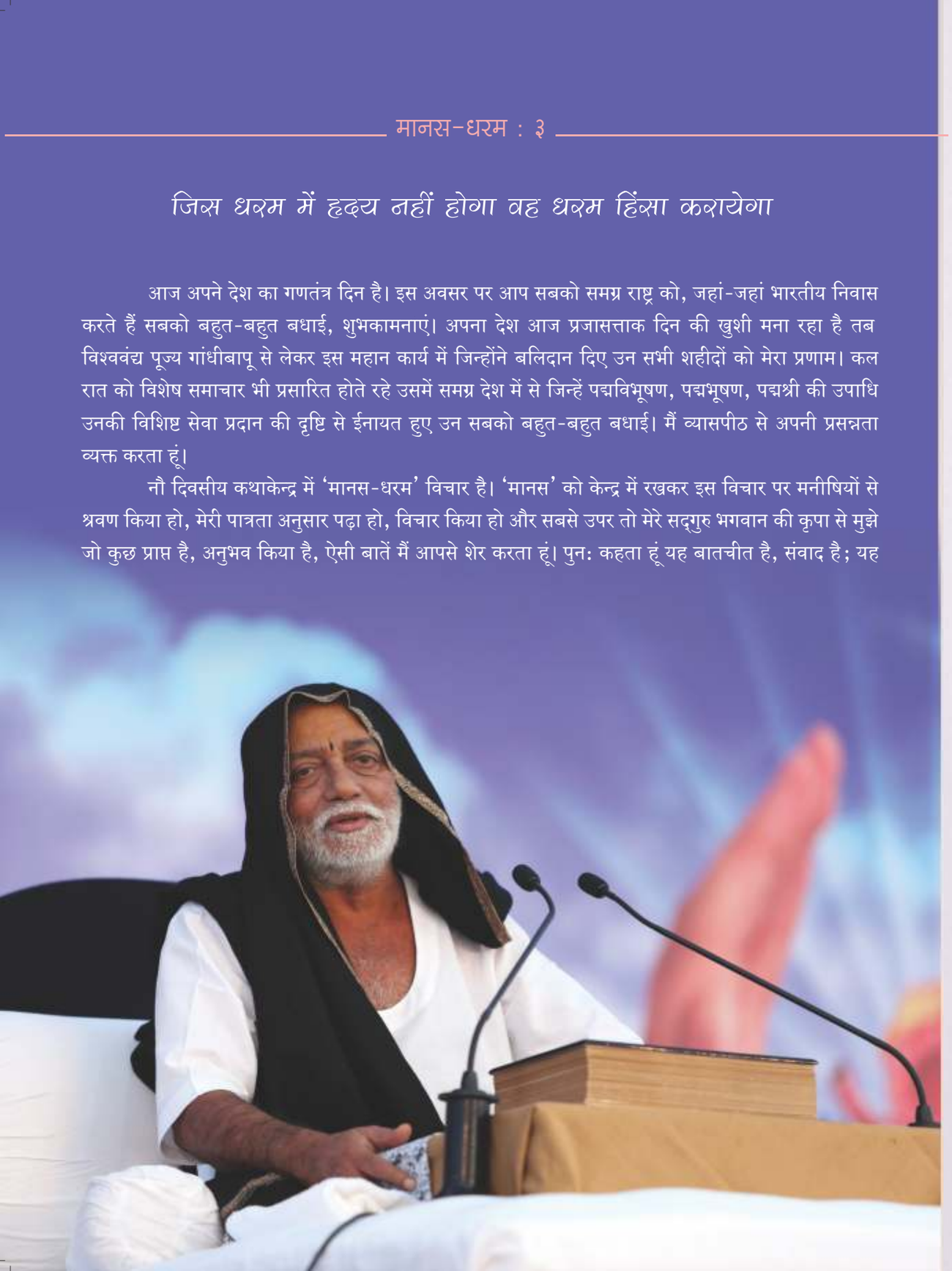

धर्मसभा नहीं है, हृदयसभा है, अतः मैं इसे प्रेमयज्ञ कहता हूं। जो धर्म हृदय गंवा बैठे वह धर्म है या नहीं? कृपा कर इक्कीसवीं सदी इस पर विचार करे।

सबको अपना-अपना धर्म होता है। इसकी स्वतंत्रता उसका अधिकार है। मैंने दो-एक कथा से कहना शुरू किया है बाप कि अपना धर्म या तो दूसरों का धर्म हमारे धर्म से भिन्न है इसका स्वीकार करना चाहिए। कोई धर्म दूसरे धर्म से हीन है यह विचार ही घातक है। भिन्न रहते हुए भी धर्म के मूल सूत्र तो एक ही है। फिर भी यह धरम, यह धरम, यह धरम कहते रहते हैं। सबकी अलग-अलग रीति का स्वीकार करे।

हृदय का प्रथम लक्षण धड़कना है। वह संकीर्ण या स्थूल नहीं होना चाहिए। बिना हृदय का धर्म कैसा? यह प्रश्न है। 'मानस' माने हृदय। 'मानस-धर्म' माने हृदयधर्म। हमें जब हृदयधर्म समझ में आयेगा तब धर्म-धर्म के बीच में संघर्ष, अनेक विभीषिकाओं का निराकरण हो जायगा।

महामुनि विनोबाजी का सदा पसंददीदा प्रेरक वाक्य है, 'दो धर्मो के बीच नहीं, पर दो अधर्मों के बीच संघर्ष होता है।' अपने पास 'रामायण' के कई पात्र है। उन सभी पात्रों के हृदय में हृदयधर्म पड़ा ही है। मुझे तो स्वर्ग नहीं जाना है। गनी दहींवाला के मेरे प्रिय शब्द है -

न धरा सुधी, न गगन सुधी, नहीं उन्नति, न पतन सुधी,
अहीं आपणे तो जवुं हतुं, फक्त एकमेकना मन सुधी.
दिवसो जुदाईना जाय छे, ए जशे जरूर मिलन सुधी.
मारो हाथ झालीने लई जशे, हवे शत्रुओ ज स्वजन सुधी.

आदमी शायद आदमी तक पहुंचा होगा पर हृदय हृदय तक नहीं पहुंचा है। धर्म की इतनी चर्चा के बाद, धर्म के महान समारंभो के बाद भी हम हृदय तक नहीं पहुंच पाए हैं। त्रिवेदीसाहब ने हृदयधर्म का एक यज्ञ शुरू किया है, संवेदना का यज्ञ शुरू किया है। अतः मुझे यह बात कहने का अवसर मिला।

यह पांच पात्रों की कथा लिखी है-शिबि, दधीचि, हरिश्चंद्र, रंतिदेव और बलि। ये पात्र 'महाभारत' और पुराण के हैं। इन पांचों में से आप किसे मुख्य मानेंगे? ऐसी कौन-सी वस्तु थी कि इन पांचों ने धर्म के लिए कोटि-कोटि संकट सहन किए? कभी आदमी को शांति से संकटों की संख्या के बारे में सोचना चाहिए। हम किसे संकट माने? 'हनुमानचालीसा' में लिखा है -

संकट से हनुमान छुड़ावे।
मन क्रम बचन ध्यान जो लावे।।

पर ये कौन-से संकट? व्यावहारिक संकटों के बारे में हम बहुत बोलते हैं। हम एक शब्द 'धर्मसंकट' का बारबार उपयोग करते हैं। ये सभी संकट या क्लेश सहन किए मूल में तो ये पांच ही है। पतंजलि ने कहा है। ऋषि योगसूत्र में पांच क्लेश की बात करते हैं। फिर इसका विस्तार हो सकता है। हमारे सामने पांच पात्र है; उनकी सारी बाते हैं। इन पर बड़े-बड़े व्याख्यान हुए हैं। हम सबको संकटमुक्त होना है। पर संकट की संख्या कितनी? इन्होंने अनेक प्रकार के संकट सहन कर धर्म को धारण कर रखा।

युवा भाईयों-बहनों को मेरी खास बिनती है; इस पोल में 'महाभारत' की कथा होती थी वह तो गई! माणभट्ट रहे नहीं। माणभट्ट की विद्या का जतन कर बड़ौदा में बैठे धार्मिकबापा है। ये सारी प्रेमानंदी कथा और 'महाभारत' की कथा होती थी। अब सब आईपेड में मिलता है। आप वहां 'महाभारत' देखिए, 'रामायण' देखिए। समझ में न आए तो जितना समय मिले उसमें किसी को सुनायेगा। एक कर्ण के कवच-कुण्डल चले गए पर देश के सभी कवच-कुण्डल किसीने निकाल दिए! कौन ठगने आया है? क्या इन्द्र? यह इन्द्रजाल कहां से आई है, जिसने हमारी संवेदना खत्म कर दी है? कर्ण का कवच ले लिया माने क्या? फिर भी कर्ण ने अपनी

संवेदनशीलता बचा ली। मैं आपका मनोरंजन नहीं मनोमंथन करना चाहता हूं। ऐसे मथने से समुद्र में से विश्वोपयोगी चौदह रत्न निकले, तो इस कथा के मंथन से चार युवा निकले तो मैं प्रसन्न रहूंगा।

अयोध्या में प्रेमराज्य की स्थापना हुई। यहां रामने सभा रखी है। प्रभु ने प्रवचन किया है। इस अद्‌भुत सभा में समग्र जनता, वशिष्ठजी, सखा, माताएं सम्मिलित है। रामजी जनता को संबोधन करते हैं। उसमें एक सरस वाक्य है। मैं आपको मेरे विचार देना चाहता हूं। मेरी बिनती है।

जौं अनीति कछु भाषौं भाई।
तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।

राम का यह वक्तव्य प्रजातंत्र का प्राण है। भगवान राम ने ऐसा कहा कि मैं आपको संबोधन कर रहा हूं तब मेरे मुंह से कोई ऐसी नापसंद बात निकले तो मुझे बीच में टोककर मेरी वाणी रोक देना। मैं राजा हूं पर मुझसे डरना मत। यह 'रामचरित मानस' है। जहां ज्ञान भयमुक्त हो; जहां भयमुक्त होकर विचार रख सके; जहां शब्द सत्य की गहराई में से निकलते हो और जहां मेरा समाज सामाजिक दीवारों से विभक्त न हो; टुकड़े न होते हो, बिखरता न हो, ऐसे स्वर्ग में प्रभु तुम मेरे राष्ट्र को रखना।

शिबि अपना शरीर काटकर कबूतरों को दे देता था। हरिश्चंद्र बिक गया। यह उस काल का सत्य है। यह आदर्श नहीं होना चाहिए। पूज्यपाद सच्चिदानंदजी महाराज दंतालीवाले कहे कि सुदामा अद्‌भुत है। जिनके पास ब्रह्म की संपदा है। ऐसे पात्र हमें गद्‌गद्‌कर देते हैं। पर सुदामा समाज का आदर्श नहीं होना चाहिए। हमें सुदामा नहीं होना है। मानव समृद्ध होना चाहिए।

युवा भाईयों-बहनों को दो-पांच वस्तु का ध्यान रखना चाहिए। एक, विचारों में रहना। विचारहीन होकर मत जीना। पर कैसे, कितने, कब ये सभी किसीसे सिखना चाहिए। हनुमानजी विचार करते हैं। 'कपि मन किन्ह बिचार।' दूसरा, आदमी विनोदप्रिय होना चाहिए। इसलिए कहता हूं कि इक्कीसवीं सदी का धर्मगुरु हंसता हुआ होना चाहिए। यह बहुत जरूरी है। डोक्टर, राजनेता भी हंसता हुआ होना चाहिए।

तो, विचारों में जीना, प्रसन्नता रहना। विनोदी स्वभाव होना चाहिए। किसी अच्छे लेखक का लेख, कोई कवि, ग्रन्थ, विचारक का, अच्छी विद्या का, साधु-संत के सत्संग से प्राप्त विवेक में रहना। ऐसे सीधेसादे सूत्र है। विस्मय के साथ जीना चाहिए। आदमी का विस्मय टूटना नहीं चाहिए। प्रभु ने दिया हो और किसी अच्छे क्षेत्र में बोने का वक्त आए तब बिराग में जीना चाहिए। बिराग माने दसवां हिस्सा निकालकर जीना। अपनी आय का

युवा भाईयों-बहनों को मेरी खास बिनती है; आपने यहां सबकुछ आइपेड में भरा हुआ है। आप थोड़ा 'रामायण' और 'महाभारत' देखिए; समझ में न आए तो किसी को सुनीयेगा। कर्ण का एक कवच-कुंडल चला गया, पर देश के सबके कवच-कुंडल किसीने निकाल लिए हैं! कौन ठगने आया है? इन्द्र। कहां से वह इन्द्रजाल आई है कि जिसने हमारी संवेदना खत्म कर दी है! कर्ण का कवच ले लिया माने क्या? फिर भी उसने अपनी संवेदनशीलता बचाकर रखी। मुझे आपका मनोरंजन नहीं, मनोमंथन करना है।

दसवां हिस्सा परमार्थ के लिए निकाले तो राष्ट्र के लिए अच्छा होता है।

आदमी का पानखर्च सौ रूपया है। अंकित ने बताया कि वेणीभाई कहते थे कि पान के दो फायदे हैं। एक, मुंह में रहे तब तक मौन रहना होता है और दूसरा, थूकने जैसा हो और थूक डालते हैं। पर एक बात समझ में आई कि किसी उदास आदमी को पान खिलाइए तो मौज में आ जाता है। केवल पान! एक पान में आदमी को प्रसन्न करने की ताकत है तो कथा के पान में कितनी ताकत होगी? 'श्रीमद् भागवतजी' के गोपीजन ने कहा है, हे गोविंद -

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवण मंङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः।।

परमात्मा के पवित्र गुण-कीर्तन का गान-पान हमें ज्यादा प्रसन्न करते हैं। हम श्रवण विद्या भूल चुके हैं! नहीं तो क्रांति हो सकती है। अतः भागवतकार कहते होंगे, प्रथम भक्ति श्रवण है। आप दो-पांच मिनट किसी ज्येष्ठ-श्रेष्ठ या मित्र की अच्छी बात सुनो। केवल कथा ही सुने, मैं ऐसा नहीं कहता। श्रवण को मैं विशाल अर्थ में कह रहा हूं।

भगवान ने वाल्मीकिजी से पूछा कि मुझे चौदह वर्ष बन में किस जगह रहना चाहिए यह बताइए, तब 'रामचरित मानस' में जो स्थान बताएं उसमें पहला स्थान श्रवण का है।

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।।

आप सुनिए। श्रवण एक विज्ञान है। 'भागवत' में भी कहा गया है कि मेरे कान अच्छा सुने। कान द्वारा शुभ विचार हृदय में उतरे। तो बाप, अपने कुंडल कोई ले गया है! इसीलिए धर्म के अलग-अलग नाम है। रहने चाहिए, पर कहीं हृदय का धरम चुक जाते हैं! जिस धरम में हृदय न हो, ऐसा धरम हिंसा करोयगा। यह धरम शास्त्रों को छोड़कर शस्त्र उठायेंगे। ऐसा धरम विघटन पैदा करेगा। ऐसा धरम सेतु नहीं बांधेगा, तोड़ डालेगा। इसीलिए हमने कथा का केन्द्रीय विचार 'मानस-धरम' रखा है।

तो, 'महाभारत', 'श्रीमद् भागवत' आदि ग्रन्थों में से इन पांच चरित्रों को हम लगभग जानते हैं। चर्चा थी संकट कितने प्रकार के? इन्होंने कई प्रकार के संकट सहन किए। एक तो धर्मसंकट, जिसमें 'धर्म' शब्द के आने से बातचीत करने से सत्य, प्रेम और करुणा जुड़ते हैं। जहां सत्य, वहां संकट होगा ही। दिल्ही के शायर नवाज़ देवबन्दी का शे'र है -

मज़ा देखा मियां सच बोलने का?
जिधर तू है उधर कोई नहीं!

तू जहां सत्य लेकर बैठा है वहां तेरे साथ भीड़ नहीं होगी। लोग तेरे सामने होंगे। धर्मसंकट में सत्यसंकट। दूसरा भक्त पर आता संकट जिसे प्रेमसंकट कहते हैं। तीसरा करुणा का संकट। हमें धर्मसंकट होता है पर आखिर में हम आदमी है। आदमी की कमजोरी होती है। प्रेम, सत्य, करुणा के मार्ग पर कितना चल सके! कितना आचरण में रख सकते हैं! यह हम भूल जाते हैं क्योंकि हम आदमी है। पर इस पर विचार करते हैं इतनी हद तक हम अच्छे हैं। हम कर सके तो फिर सवाल ही नहीं है। करना चाहिए। आदमी का कमज़ोरी के साथ स्वीकार कीजिए। दीक्षित दनकौरी की एक गज़ल है -

या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तन्हाइयों के साथ।

मेरी कमज़ोरियों के साथ स्वीकार कर या मुझे अकेला छोड़ दे। मध्यकालीन संतों ने कहा है, 'मो सम कौन कुटिल खल कामी।'

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु।।

तुलसीदासजी कहते हैं -

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर।।

युवाओं को सीखने जैसा शे'र -

लाज़िम नहीं कि हर कोई हो कामयाब ही,
जीना भी सीख लीजिये नाकामियों के साथ।

जरूरी नहीं कि सभी सफल हो। कभी निष्फलता के साथ जीना सिखना चाहिए।

तो, सत्य में आता संकट, प्रेममार्ग में आता संकट और करुणा के मार्ग में आता संकट यह धर्मसंकट है। संकट आते ही रहते हैं। भरतजी प्रेममार्गी है। 'रामचरित मानस' में भरत को प्रेममूर्ति कहा है। भरतजी को 'रामचरित मानस' में राम के प्रेम का साक्षात् विग्रहरूप माना है। भरत माने राम के प्रेम ने एक मनुष्य शरीर धारण किया इसका नाम भरत है। 'रामचरित मानस' के चित्रकूट प्रसंग में भरत पूरी अयोध्या को लेकर राम को मनाने के लिए जाते हैं। इस प्रसंग से आप परिचित है। भरत की जो प्रेमयात्रा है और उसमें जो संकट आए हैं। भरत के ये संकट हमारे भक्तिमार्ग के संकट हो सकते हैं। आदमी को तैयारी रखनी चाहिए।

भरतजी चित्रकूट गए हैं। वहां उन्हें पांच विघ्न आए हैं। भरतजी ने एक व्रत लिया है कि मेरा राम यदि चलकर बन में गया है तो मैं रथ का उपयोग नहीं कर सकता। मैं सेवक हूं। मुझे पदयात्रा करनी है। भरत-शत्रुघ्न पैदल चल जाते हैं। सभी अपने-अपने वाहन का त्याग कर नीचे उतर गए! हमारे राजकुमार पैदल है तो हम कैसे रथ में बैठ सकते हैं? हम भी राम को प्रेम करते हैं। अब भरतजी के संकल्प में विघ्न-संकट आया। क्या हुआ? सभी को पैदल चलते देखकर कौशल्या ने कहारों को अपनी डोली भरतजी के पास ले जाने के लिए कहा। माँ ने पर्दा हटाकर भरत के सिर पर हाथ रखा और कहा, भाई, तू देख ले। तू पैदल चलता है तो पूरी अयोध्या पैदल चल रही है। तेरे पिता के वियोग में रामबनवास की पीड़ा और वियोग में जनता शारीरिक रूप में भी सक्षम नहीं है। बीमार हो जायेंगे। तू रथ पर बैठ जा। माने आग्रह किया। 'मानस' में स्पष्ट है। भरत रथ पर बैठते हैं, जिससे दूसरों को तकलीफ न हो। परंतु एक बात तय हो गई कि भरत ने व्रत लिया था कि मुझे सत्य तक राम माने परमसत्य तक पैदल जाना है पर इसमें विघ्न आया। भरत जैसे महापुरुष को संकट क्यों आया? मुझे लगता है व्रत जाहिर हो गया। इसका अर्थ यह है कि लिया हुआ व्रत जाहिर हो जाय तो व्रतभंग होगा। अत: व्रतधारियों को व्रत गुप्त रखना चाहिए। प्रेममार्ग का प्रथम संकट व्रतभंग है। हमारे आध्यात्मिक विकास के लिए अपनी पात्रता अनुसार लिया व्रत जाहिर हो जाय तो यह संकट है। भरत को रथ में बैठना पड़ा।

यात्रा आगे बढ़ी। गंगातट पर शृंगबेरपुर भील और निषादों की बस्ती है। भरतजी वहां आते हैं। वहां निषाद लोग राम के बन गए थे। राम वहां रुके थे। उनमें भरत को लेकर गलतफहमी हो गई! उनके मुखिया को लगा कि ये भरत निष्कंटक राज्य करने निकला है। साधक भाईयों-बहनों, सत्य के मार्ग का, प्रेममार्ग का यह दूसरा संकट है। इस राह पर चलनेवालों के प्रति समाज गलतफहमी पैदा करता है। चौपाई में यहां तक लिखा है, रामकार्य के लिए मर जायेंगे तो अमर हो जायेंगे। क्षणभंगुर शरीर एक बार नष्ट होनेवाला है ही। इस मुद्दे पर सभी मरने के लिए तैयार है। भरत को नहीं जाने देंगे। यह कैकेयी पुत्र है। विष की बैल को अमृत के फल नहीं आ सकते। ऐसी गलतफहमी पूरे शृंगबेरपुर में खड़ी हुई। सत्य, प्रेम, करुणा को, धर्म को पालनेवालों के लिए यह दूसरा संकट है। समूचे विश्व के पिता के प्रयोगों को लेकर गलतफहमियां होती थी। अभी भी है।

गांधी का मार्ग सत्य का मार्ग था। अहिंसा और करुणा का मार्ग था। हरिश्चंद्र को बिकना ही पड़ा। सोक्रेटीस को विष ही मिले। मीरां को ज़हर पीना ही पड़े। जलनसाहब का शे'र है -

हवे मित्रो बधां भेगा मळी वहेंचीने पीनाखो,
जगतनां झेर पीवाने हवे शंकर नहीं आवे.

आप कथा की गहराई में जायेंगे तो गलतफहमी पैदा होगी। तत्कालीन समाज गलतफहमी पैदा करे। भरतजी इसमें से पार उतरे। जब सत्य समझ में आया तब उन्होंने पैरों पकड़कर भरतजी का सन्मान किया।

धर्म प्रतीक्षा मागता है। 'रामायण' के दो पात्र अहिल्या और शबरी दोनों प्रतीक्षारत है। किसीको भी परीक्षा नहीं करनी है। दोनों के केन्द्र में राम है। दोनों का फ़र्क और साम्य समझने जैसा है। दोनों प्रतीक्षारत आश्रमवासिनी है। अहिल्या गौतम के आश्रम की और शबरी मातंग ऋषि के आश्रम की है। अब भेद देखें। अहिल्या शापग्रस्त है, तो राम मिले। शबरी को ऋषि के आशीर्वाद से मिले। गौतम का शाप एक को रामप्राप्ति का कारण है। दूसरी को मातंग का आशीर्वाद कि तुझे राम मिलेंगे। एक और फ़र्क है। अहिल्या निष्क्रिय है। शिला हो चूकी है; निष्कंप है पथ्थर की तरह। जब कि शबरी सक्रिय है। हररोज आश्रम की सफाई करती है। पानी का छिड़काव करे। आसोपालव के बन्दनबार बांधे। बेर चुने। पंपा सरोवर से स्वच्छ जल भर लाए। कब लौटे, क्या पता? यद्यपि उसके पास कोई

साधन नहीं है। तप, यज्ञ, विधिविधान कुछ भी नहीं है। परंतु सक्रिय है। आदमी सक्रिय होना चाहिए। दोनों को राम मिलते हैं पर साथ में सीता नहीं है। अहिल्या के पास आए तब साथ में सीता नहीं है। अहिल्या मिली इसके बाद सीता मिली। सीता माने भक्ति। भक्तिप्राप्ति का अधिकार है कि जो उत्साहहीन उसके क्षेत्र में प्रवेश करे उनमें नवसंचार कर दे, जीवन संदेश दे, चैतन्य भर दे।

शबरी को राम-लक्ष्मण मिले तब साथ में सीता नहीं। सीता का अपहरण हो चूका है। राम खोजने निकले हैं। शबरी ने मार्गदर्शन दिया कि आप पंपासरोवर जाइए। वहां आपको आगे का मार्गदर्शन मिलेगा। सुग्रीव के मिलने पर सीता की खोज आगे बढ़ेगी। राम मिले और दोनों का विसर्जन हुआ। दोनों के भिन्न लोग है। राम मिलने के बाद अहिल्या वहां न रही। अहिल्या पतिलोक गई। राम से मिलने के बाद शबरी परमपद में गई, जहां से कोई लौटकर नहीं आता। राम मिले फिर क्या रहा? उस काल के संदर्भ में देखें तो वह उत्तम वर्ण की महिला है। ब्रह्मा का श्रेष्ठ सृजन अहिल्या है। बह्मकुल से आई है। 'अधम ते अधम अधम अति नारी।' वर्णाधम है।

राम का अधिकार किसी को भी है। राम को कोई भी पा सकता है। ब्रह्मा ने तपस्वी गौतम को अहिल्या दी। आप साधु है, तपस्वी है, इससे आप इनका ठीक जतन करेंगे। इस भरोसे पर सौंप रहा हूं। ऋषि ने जतन किया तो ब्रह्मा ने ब्याह रचा दिया। शबरी का ब्याह होनेवाला था। भोजन में बड़ी हिंसा होनेवाली थी जानवरों की! 'मुझे ब्याह नहीं करना है', कहकर भाग निकली। वह पहली क्रांतिकारी महिला थी। एक और साम्य। कलापी के शब्द है -

हा! पस्तावो विपुल झरणुं स्वर्गथी ऊतर्युं छे,
पापी तेमां डूबकी दईने पुण्यशाळी बने छे.

•

देखी बुराई ना डरुं हुं, शी फिकर छे पापनी!
धोवा बुराईने बधे गंगा वहे छे आपनी!

- कलापी

अहिल्या कहती है -

मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु बन सुखदाई।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई।।

मैं अपवित्र नारी हूं। शबरी कहती है, मैं अधम नारी हूं। एक अत्यंत सुंदर स्त्री है तो दूसरी आदिवासी भीलनी है। यद्यपि राम को शबरी ही सुंदर लगी है। यदि न लगी थी तो वे शबरी के लिए 'भामिनी' शब्द का उपयोग क्यों करते? अहिल्या को रूप के कारण या किसी दूसरे कारणवश भोगवृत्ति जाग्रत होती है। वेशबदला जा सकता है पर वाणी नहीं बदली जा सकती। इन्द्र गौतम का वेश लेकर आए तो अहिल्या पहचान न सके? कहीं मानव स्वभाववश अहिल्या के मन में भोगवृत्ति जगती है। शबरी में भोगवृत्ति नहीं, योगवृत्ति है। इसीसे जब बिदा होती है तब योगाग्नि में देह समर्पित कर विलीन हो जाती है। 'रामायण' के कुछेक पात्र योगाग्नि में गए। 'मानस' के ये पात्र उल्लेखनीय है।

अहिल्या युवा है, शबरी वृद्धा है। उम्र भेद बड़ा है। दोनों के आश्रम में राम नंगे पैर गए। राम इसीलिए सर्वपूज्य है, क्योंकि राम के लिए सर्वपूज्य है। वे अहिल्या को प्रणाम करते हैं। भगवान भूमि को भी पवित्र करना चाहते थे इसलिए नंगे पैर गए। अमुक भूमिकावालें साधकों को धन्य करने थे। मेरी दृष्टि से अमुक स्थिति का नाम ही परमात्मा है। जहां ईर्ष्या न हो, दंभ न हो, पाखंड न हो। मेरे साधक भाईयों और बहनों, बिना वजह आपका हृदय आनंदित रहे उसी स्थिति का नाम परमात्मा है। अमुक स्थिति का नाम ही परमात्मा है।

अशुद्ध का स्वीकार कर, शुद्धकर लौटाए वही हृदयधर्म है

'मानस-धरम' माने हृदयधर्म। 'रामचरित मानस' में आदि से अंत तक जहां 'धरम' शब्द का उपयोग हुआ है वह निजधरम है। जहां 'मानस' का विराम है वहां भी 'निजधरम' शब्द है। इन दो निजधरम के बीच संपूर्ण प्रेमशास्त्र समाविष्ट है। भगवान योगेश्वर ने निजधर्म को स्वधर्म कहा है। यहां तात्त्विक दृष्टि से सोचे तो अपना क्या है? हमारे शरीर के सभी अवयव हमारे हैं। पर यह तभी संभव है जब अपने पास अपना हृदय हो। मेरी व्यासपीठ की दृष्टि से निजधर्म का प्रयोग हृदयधर्म है। यहां सभी विशेषणों से मुक्तधर्म की चर्चा है। तुलसी ग्राम्यगिरा में विशेष रूप से 'धरम' शब्द का उपयोग करते हैं। कहीं पर प्रास मेल की दृष्टि से 'धर्म', 'धरमु', 'धर्मा' शब्द का उपयोग करते हैं। मूल तो 'धर्म' शब्द ही है। तो हृदय का एक बड़े से बड़ा धर्म तो वही है।

किताब का हृदय अलग होता है, कलेजे का हृदय अलग होता है। जहां तक संवेदना के हृदय की चर्चा है। अत: यह एक प्रेमयज्ञ है। कुछेक निज इच्छा से अपने-अपने अर्घ्य अर्पित कर रहे हैं। सब का स्वागत है। हम जानते हैं कि हृदय का सबसे बड़ा काम अशुद्ध लहू को शुद्ध में परिवर्तित करना है। यह कार्य हृदय करता है। पर क्या हृदय लहूमुक्त कर सकता है? लहू हो तो लहू जले न! हृदय लहू न रहने दे ऐसा कार्य कर सके तो कितना अच्छा हो! अशुद्ध को शुद्ध करना। पूरा रूधिराभिसरण शुरू हो जाय। मैं गुरुकृपा से जो बात समझा हूं यही बातें केन्द्र में रखकर करनी है।

हमें हृदय लहू से मुक्त नहीं करता। अशुद्ध लहू का स्वीकार कर शुद्ध करता है। हृदय का धर्म रक्त मुक्त माने विरक्ति की प्रेरणा नहीं देता है। आप संसार छोड़ दे ऐसी प्रेरणा नहीं देता। 'यह संसार असार है, कुछ भी अच्छा नहीं है! सब सपना है!' सपना याद नहीं रहता, तो संसार कैसे याद रहे? असल बात यह है। हृदय विरक्त नहीं करता पर विरक्त को एक विशेष हृदय का अनुभव करवाता है। 'विरक्त' अच्छा शब्द है। जो विरक्त महापुरुष है उन्हें हम श्रद्धा से प्रणाम करते हैं। विरक्ति किसी वेश के आधार पर नहीं होती। यह तो वृत्ति का सवाल है। फिर से त्रिवेदीसाहब को केन्द्र में रखकर कहूं तो ये केनेडा में ज्यादा इन्कम टेक्स भरते थे। उनकी इतनी आय थी। वह सब छोड़कर यहां बसे फिर भी उन्होंने भगवे कपड़े नहीं पहने हैं।

विरक्त माने क्या? 'रामचरित मानस' में ऐसा है कि हनुमानजी जब लंका में प्रवेश करते हैं तब वह लंकिनी, लंका की अधिष्ठात्री या एक मत वाल्मीकि का ऐसा है कि लंका स्वयं एक नारी का रूप लेकर रात में स्वयं का रक्षण करती थी। यह एक संदेश है कि व्यक्ति को दूसरे पर आधार न रखकर स्वयं की रक्षा स्वयं को करनी चाहिए। उधार की सुरक्षा कब तक? अंगरक्षक भी मार डालते हैं! मैं निज की रक्षा करूं। मैं अपना दीया बनूं। मुझे अपनी निजता चाहिए। मैं अपने स्वभाव के अनुसार जीवन जीऊं।

हनुमानजी लंका में प्रवेश करने जाते हैं उस समय रावण का गुप्तचर विभाग कितना मजबूत होगा कि छोटा-सा मशक का रूप लेकर लंका में प्रवेश करने गए तो लंकिनी द्वारा पकड़ लिए गए! उसने कहा, 'खबरदार, अंदर गए तो! मैं चोर को खाती हूं। चोर मेरी खुराक है।' इस मुद्दे पर श्रीहनुमानजी ने मुष्टि का प्रहार किया है वहां तुलसीदासजी ने शब्द प्रयोग किया है, 'रुधिर बमत धरनीं ढनमनी।' उसके मुंह से लहू का गरारा हुआ। वह धरती पर गिर पड़ी। मुंह में खून निकला। इसका अर्थ यह हुआ कि एक संत का स्पर्श उसके मस्तक पर हुआ तो वह विरक्त हो गई। इसे विरक्त कहते हैं। विचार बदल गए। वृत्ति बदल गई। इस पूरी वृत्ति को ट्रान्सप्लान्ट कर दी। हमें ऐसी विरक्ति चाहिए। हृदयधर्म का कर्तव्य है कि किसीको विरक्त न करे। पर हृदय अशुद्ध रक्त को शुद्ध

करता है, यूं अशुद्ध का स्वीकार कर उसे शुद्ध कर समाज को लौटाना; यही हृदयधर्म है। मेरा सतत सूत्र यहां है कि आप स्वीकार कीजिए। पुन: शुद्ध कर भेजिए। इस अर्थ में मैं 'मानस-धरम' को लेना चाहता हूं। हमारा धर्म स्वीकृति का है।

आदमी बीमार पड़ जाय तो क्या डोक्टर थप्पड मारकर कहे, 'आप सब यहां बीमार बनकर ही आते हैं!' डोक्टर का धर्म है बीमार को तंदुरस्त कर लौटाना। यही 'मानस-धर्म' है। गंगा तट पर जायें तो गंगा ऐसा नहीं कहती कि जा, पहले स्नान कर आ। तेरा शरीर मैला और यहां स्नान करने आया है! साफसुथरा होकर आ। गंगा को ऐसा कहने का अधिकार नहीं है। गंगा का अर्थ है तू जैसा भी है, मुझ में कूद पड। मैं तुझे शुद्ध कर वापिस भेजूंगी। यही हृदय का धर्म है। हृदय का धर्म विरक्ति नहीं है। मैं विरक्ति की आलोचना नहीं करता। फिर भी जो विरक्ति प्राप्त है उस अवस्था को मेरा प्रणाम। मेरे दादा विष्णुदेवानंद गिरि, महामंडलेश्वर ऋषिकेश आश्रम में थे; मेरे दादा के छोटे भाई माने दादा-काका, वे संन्यासी हुए, विरक्त हुए फिर उन्होंने गुजरात में कभी पैर नहीं रखे। उन्होंने कैलास आश्रम का विकास नहीं किया। उनका जवाब था, मैं सिमेन्ट की ट्रकों का हिसाब करने नहीं बैठा हूं! मैं उपनिषदों का अध्ययन और स्वाध्याय करने के लिए विरक्त हुआ हूं। विरक्ति कितनी बड़ी उपलब्धि है! भीतर के कषाय मिट जाय ऐसी स्थिति को मैं कल की कथा में भगवान कह चुका हूं।

युवा भाईयों-बहनों, मंदिर की महिमा है। मंदिर जाना चाहिए। उनका अतिरेक नहीं होना चाहिए। परमात्माने ओलरेडी प्राणप्रतिष्ठा कर भेजा है, इस मानवमंदिर का ध्यान रखना है। ईश्वर ने विधविध प्रकार की मूर्तियां भेजी है। स्वयं ईश्वर ने उसमें प्राणप्रतिष्ठा की है। ऐसी मूर्तियों के लिए मंदिर नहीं है! हमारे पास शौचालय भी नहीं है!

हनुमानजी ने लंकिनी पर मुष्टि प्रहार किया है। रक्त निकल गया, वह विरक्त हो गई। ऐसा नहीं कि लंकिनी को भगवे कपड़ें पहना दिए। लंकिनी की मृत्यु हुई, ऐसा भी नहीं लिखा है। 'सुन्दरकांड' में वह आशीर्वाद देती है, 'प्रबिसि नगर कीजे सब काजा।' जो कहती थी कि मैं चोर को खाती हूं; चोरी करनेवाले को खाती हूं। शुभ कामना देने लगी! शाप-क्रोध देनेवाली करुणा की मनोदशा में आ गई।

किसी के स्पर्श से यह स्थिति बदलती है। उसका नाम परमात्मा है, ईश्वर है। मंदिरों में परमात्मा होने ही चाहिए। लेकिन इसी स्थिति को ईश्वर मानिए।

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा।
हृदयँ राखि कोसलपुर राजा।।
जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा।
मोर अहार जहाँ लगि चोरा।।

लंकिनी को एक संत में चार के दर्शन होते थे। लंकिनी के दृष्टिकोण को हनुमानजी ने मुष्टि प्रहार कर रक्त निकाल डाला। माने उसे विरक्त कर दी कि जिसे संत में चोर के दर्शन होते थे। दूसरे ही क्षण वही व्यक्ति एक हाथ के स्पर्श पाने पर कहने लगी, आज मेरे पुण्य का बहुत प्रभाव है कि मैंने अपनी आंखों से एक संत के दर्शन किए। इस वृत्ति का जो रूपांतरण हुआ वही अशुद्ध लहू का शुद्धिकरण है। रक्तहीन करने की बात नहीं है। यदि सभी विरक्त हो जाय तो क्या होगा?

इसीलिए कहता हूं, आप ओफिस मत छोड़िए। खेत-कार्य मत छोड़िए। विद्यार्थी पढ़ने का काम न छोड़े। जब भी समय मिले तब आना है। आने के बाद अच्छा लगे तो सुनना है। सुनने के बाद स्वीकार्य करने जैसा लगे, प्रसन्नता मिले तो स्वीकार कीजिए। फिर वह वस्तु आपकी होगी। वह हस्तांतरित होगी। अत: श्रवण कीजिए। मेरा तो नवयुवाओं से सूत्र है, मुझे वर्ष में से नौ दिन दीजिए, मैं आपको नवजीवन दूंगा। यह मेरा भरोसा है कि हम सबके जीवन में एक नई प्रसन्नता का प्राकट्य होगा।

शरीर की कसरत, योगा, भ्रमण आदि जितना हो सके उतना कीजिए। पर 'मुझे ऐसा हो जायेगा! मैं मर जाऊंगा!' ऐसा ज्यादा सोचकर बहुत डरना नहीं है। हर साल चेकअप करवाइए। कई बार तो कुछेक को इतना गंभीर नहीं होता। या तो अपने स्वभाववश डर जाते हैं या तो डरा देते हैं! धर्म से भी भयभीत मत बनिए, प्रलोभन मत रखिए। शारीरिक बीमारियों से भी भयभीत नहीं होना है। सावधान रहना है। धर्म में भी सावधान रहना है। कहीं पोषण के बदले शोषण न हो जाय।

गुरुकृपा से मेरा प्रवाह चलता रहेगा तो मुझे कृष्ण और कर्ण का तुलनात्मक अभ्यास करना है। नाम के अक्षरों में ज्यादा फ़र्क नहीं है। 'ण' किसी का नहीं! जिस नाम के पीछे 'ण' लगता है ये सभी असंग है। किसीके भी नहीं लगते। कृष्ण किसी का नहीं, बिलकुल असंग। रथ खड़ा रखा तो पांडव भी इतने दूर और कौरव भी इतने दूर। बिलकुल मध्य में। कर्ण किसे पसंद नहीं है? उज्वल लड़के किसे पसंद नहीं आते? कर्ण के बाद द्रोण। द्रोण को थोड़ा अन्याय जरूर हुआ है। द्रुपद ने अपमान किया है। विद्याकाल में दोनों मित्र थे। राजा बनने के बाद द्रुपद ने अपमान किया है। 'महाभारत' में 'ण' वाला पात्र विकर्ण है। रजस्वला द्रौपदी का चीरहरण राक्षस दु:शासन करता है। ऐसी सभा जिसमें आचार्य बैठे हैं। दाढीवाले भीष्म बैठे हैं। धृतराष्ट्र तो अंध ही है। मेरा निवेदन ध्यान से सुनियेगा। सुरदास प्रज्ञाचक्षु बहुत अच्छी तरह से गाते थे। धृतराष्ट्र को भी किसी ने हार्मोनियम दिया होता तो युद्ध की नौबत न आती! सूर पकड़ा दिया होता तो सरसंधान न होता। वह कैसी सभा रही होगी! चोपरासाहब ने 'महाभारत' सिरियल के साथ कितना न्याय किया है! बिनसांप्रदायिकता देखिए। इसके संवाद एक मुस्लिम ने लिखे हैं। हमने इनका सन्मान किया था। उनकी पुत्री मिली तो कहने लगी, 'बापू, आप मानिए या न मानिए, आपकी रामकथा हम देखते हैं।' अपनी बाहों में तमाम धर्मों को लेनेवाला दूसरा कौन-सा राष्ट्र है? वह अपनी अस्मिता है।

सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा।
हम बुलबुले हैं उनकी ये गुलिस्तां हमारा।
मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना,
हिन्दी हैं हम वतन है ये हिन्दुस्तां हमारा।

इस देश में किसने आग लगाई है? मेरे पास एक मुस्लिम युवा आता है। सामने बैठा, कहा, 'बापू सलाम।' मैंने कहा, 'आओ, कहां से आते हो?' 'बापू, इस पहाड़ी के पास एक गांव है वहीं से आता हूं। आपके पास एक बार निकट बैठना था, एक बार नज़दीक से देखना था। पीपावाव की कथा में सपरिवार आता था। पर भारी भीड़ थी। दूर बैठते थे। आपके निकट कैसे आए?' देखिए, मिलन के समय सब आ सकते हैं। कथा के दौरान मैं मौन रहता हूं। मैं व्यासपीठ पर से ही बोलता हूं। फिर मौन रखता हूं। शाम को छ: बजे संध्या-पूजा के बाद पुन: बोलता हूं। सबसे मिलता हूं। तलगाजरडा में झूले पर बैठकर तीन-तीन घंटे तक मिलता हूं। तो, मुझे मिलना मुश्किल नहीं है। लोग अपनेआप मान लेते हैं कि कैसे मिले? यार, चले आओ न! क्या मेरी परमिशन लेनी पड़े? आप डायरेक्ट संबंध रखिए। वाया वाया आए तो देरी होगी। सीधे आये तो इन्स्टन्ट मिल सकते हैं।

प्लीज़, आप मुझे समझ सकते हैं। यदि नहीं तो मैं अश्रु सह कहूं कि यह आपकी जिम्मेदारी है। मैं आप जैसा ही एक सामान्य आदमी हूं। मैं वही रहना चाहता हूं। मैं सबसे बिनती करता हूं कि मेरे नाम के आगे 'पूज्य' मत लिखिए। 'परमपूज्य' तो बिलकुल नहीं। 'प्रात: स्मरणीय' तो निकाल ही दीजिए। 'मानस मर्मज्ञ' निकाल

दीजिए। 'धर्मधुरंधर' तो रहने ही दीजिए। मुझे पांच अक्षर 'मोरारिबापू' रहने दीजिए। मेरी व्यासपीठ को विशेषणमुक्त इन्सान चाहिए। समाज को क्या हो गया है कि मानव को मानव नहीं रहने देता!

'मानस' में ऐसा संदर्भभेद से है। बैद, धर्मगुरु और राष्ट्रसचिव परस्पर खुशामद करे! राजधर्म-सनातन धर्म को हानि होगी। पोषण के बदले शोषण होगा तो हानि होगी। अत: मानव को मानव रहने दीजिए। उसे सिर पर चढ़ाए और कहे वे तो भगवान है। फिर भ्रम पैदा होते हैं। इसीसे पतन होता है। 'मोरारिबापू' काफी है, पर्याप्त है। मैं आपके साथ जमीन की बातें करता हूं। मैं जो समझा वह आप तक पहुंचाने की बातें करता हूं। इस जगत में अपनी हैसियत क्या? अत: मानव को मानव रहने दो। भगवान राम ने भी मानव का अवतार लिया हो तो हम क्यों भगवान बनने की कोशिश करें? तुलसी क्या लिखते हैं? माँ कौशल्या का स्पष्ट आदेश है; 'मानस' में राम चतुर्भुज होकर आए थे। विराट दर्शन होते हैं। कौशल्याजी ने स्पष्ट कह दिया कि हे ब्रह्म, मुझे यह सब नहीं चाहिए। 'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।' राम मानव बने। मानव होना बहुत बड़ी उपलब्धि है। बस, वृत्ति बदलनी चाहिए। अत: लंकिनी और हनुमानजी के संवाद में से ऐसा तत्त्व पकड़ में आता है। आप सब रीक्षा ले ले तो फिर मैं अकेला क्या करूंगा? विरक्ति का अर्थ विचार और वृत्तियों का रूपांतरण होना है। यही मानवधर्म है।

मूल बात पर आए। दु:शासन का हाथ एक अबला के चीरहरण के लिए आगे बढ़ा है तब एक माई का लाल खड़ा होता है उसके नाम के पीछे भी 'ण' है, वह विकर्ण है। उसने सभात्याग किया, 'यह निंद्य कर्म है, यह ठीक नहीं है।' 'ण' किसी का नहीं। सूरज किसी एक का नहीं, वह सबका है। हिन्दु, मुस्लिम, अमेरिका, जापान किसीका नहीं पर सबका है। सबके साथ प्रामाणिक डिस्टन्स रखकर तपता रहता है। अपनी पात्रता अनुसार सभी उससे ऊर्जा प्राप्त करते रहते हैं। उसी तरह 'रामचरित मानस' का कुंभकर्ण! उसमें भी 'ण' किसीका नहीं। रावण की जागृति की अपेक्षा इस की गहरी नींद अच्छी। छ: महिने के बाद जागकर सीधा निर्वाण प्राप्त किया। कईयों के जागरण की अपेक्षा नींद अधिक उत्तम होती है। रावण भी ऐसा वैसा नहीं है। उसके नाम के पीछे भी 'ण' आता है। तो रावण भी किसी का नहीं। रावण महात्मा है। मेरा तुलसी रावण को बहुत सन्मान देता है। इन सभी पात्रों को हर एन्गल से देखने होंगे। 'रामायण' द्वन्द्वात्मक है। इस द्वन्द्व को विवेकमयी दृष्टि से परखे तो द्वन्द्वमुक्त होने में देर नहीं लगती। हम अद्वैत तक पहुंच सकते हैं। इसीलिए यह ग्रन्थ अद्‌भुत है। मुझे सदैव प्रतीति रहती है कि अभी भी मैं मंगलाचरण कर रहा हूं। 'रामायण' की कथा में अभी प्रवेश नहीं कर सका हूं। शायद हैसियत नहीं, शायद लायकात नहीं। पचपन वर्षों से भूमिका बांध रहा हूं। शायद 'रामायण' अगले जन्म में शरू करूंगा। मुझे ऐसा लगता है। हमें दोबारा जन्म लेना ही है। निर्वाण नहीं चाहिए। नरसिंह महेता ने कहा है -

हरिना जन तो मुक्ति न मागे,
मागे जनमोजनम अवतार रे;
नित्य सेवा, नित्य कीर्तन-ओच्छव निरखवा नंदकुमार रे.
भूतळ भक्ति पदारथ मोटुं, ब्रह्मलोकमां नाहीं रे ...

तुलसी कहते हैं -

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।।

नरसिंह महेता, तुलसी का मत और अपना मत। हमें जनम लेना ही है। त्रिवेदी साहब जैसी आत्मा को सेवा कर्म के लिए जनम लेना ही चाहिए। गांधीजी को फिर से जनमना चाहिए। लंगोटी बांधकर नहीं पेन्ट पहनकर भी आ सकते हैं। गांधीविचार की बात है। गांधीजी के बाद कोई चरखा लेकर आए ऐसी बात नहीं, कोम्प्युटर लेकर भी आ सकते हैं। आईपेड भी हो सकता है। आज का नया गांधी। इसमें उन्हें कोई तकलीफ़ नहीं है। गांधी सबके हैं। गांधी किसी की बपौती नहीं है। गांधी पूरे विश्वमानव हैं। ऐसा मानव शताब्दी के बाद ही आता है। जगमंगल के लिए आता है।

यह शास्त्र गहन है। 'महाभारत' में जैसा कहा गया है कि जगत में जो कुछ है वह सभी 'महाभारत' में है। जो 'महाभारत' में नहीं है वह और कहीं नहीं है। मेरे छोटे अनुभव के अनुसार 'रामायण' में सबकुछ है। कहां से लें? क्या-क्या करे? अपने वर्तमान जीवन के लिए उपयोगी है, प्रासंगिक है, इसीलिए कल कर्ण-कृष्ण की तुलनात्मक बातें की। मंदोदरी और भगवती जानकी की तुलना मुझे करनी है। एक जगदंबा, धरती की पुत्री और एक पृथ्वीपति रावण की धर्मपत्नी! दोनों का तुलनात्मक अभ्यास जरूरी है। सबकी जड़ें रामकथा में है। इससे बहार नहीं है। कुछेक गुप्त तो कुछेक प्रकट है। जिस पर जितनी गुरुकृपा, जितनी अंत:करण की पवित्रता! हम भाव बदल सके इन अर्थ में वस्तु बदल सके। इन सारे विचारों का मैं स्वागत करूंगा। 'बहारों फूल बरसाओ'; मुझे सुंदर विचार आते हैं। अब मैं फिल्मीगीतों में जानबुझ कर करताल बजाता हूं, क्योंकि मैं फिल्मीगीत को कीर्तन में बदल देना चाहता हूं।

उतर आये घटा काजल...

और यह घटा काजल शृंगार का गीत है। अवश्य यह शृंगार का गीत है पर साधक जब परमकृपा का अनुभव करता है तब घटाएं उतरती होती है। साधक घिर जाय फिर उसे ऐसा लगे यह सब घिरा हुआ है पर -

अजहु ना आये बालम, सावन बीता जाय।

अब तक मेरा हरि नहीं आया। साधक घिर जाना चाहिए। ये आध्यात्मिक अनुभवों की बात है। यह घटा घिरी न हो तो आंसू आये ही नहीं। वह गरजे पर बरसे नहीं, ऐसे बादल नहीं थे।

'उतर आये घटा काजल लगा उन प्यारी आंखों में', इसे मैं विचारांजन कहता हूं। यह विवेकांजन है। इन अनुभूति के बादल को मेरी आंखों में आंजना है। जिस अनुभूति को मीरां की आंख में आंजना हुआ था। कभी राबिया की आंखों में, कभी समढियाळा की गंगासती की आंखों में आंजना हुआ था। फिर गंगासती ने पानबाई को निकट बिठाकर वही अनुभूति का अंजन उनकी आंखों में आंजना हुआ था, साहब!

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।

यह अंजन शलाका है। परिवर्तन करे।

हृदय हमें लहू से मुक्त नहीं करता, अशुद्ध लहू का स्वीकार कर उसे शुद्ध करता है। यह हृदय का धर्म है। हृदय का धर्म हमें रक्तमुक्त नहीं करता माने विरक्ति की प्रेरणा नहीं देता कि आप विरक्त होकर संसार छोड़ दो, 'यह संसार असार है!' लंकिनी को एक संत में चौर के दर्शन होते थे। यह जो दृष्टिकोण था उसे हनुमानजी ने मुष्टिप्रहार कर रक्त निकाल दिया। माने उसे विरक्त कर दी क्योंकि उसे संत में चौर दिखाई देता था। वही व्यक्ति जिसे दूसरे ही क्षण एक पवित्र हाथ का स्पर्श हुआ तो कहने लगी कि आज मेरे पुण्य का बहुत प्रभाव है कि मैंने अपनी आंखों से संत के दर्शन किए। इस वृत्ति का जो रूपांतरण हुआ वह अशुद्ध लहू का शुद्धिकरण है।

सितारो मांग भर जाओ,

मेरा महेबूब आया है, मेरा महेबूब आया है...

हे, हरि, हे विठ्ठल, रामकृष्ण हरि। इस में एक पंक्ति है, 'बडा शर्मिला दिल है...' सद्गुरु निर्लज्ज नहीं होता है। वह शर्मिला होता है। उसे पता है, ज्यादा कृपा हो जायेगी तो वह बहक जायगा। यदि कम पड़ेगी तो वह पूर्णरूप से खिल नहीं पायगा। यों धीरे-धीरे पूरा अस्तित्व चारों ओर है। उसमें किसी बुद्धपुरुष का अनुभव करवाना है। परिवारजनों की उपस्थिति में माँ बच्चे को दूध पीलाए तब शर्मीली बनकर, कमरे के कोने में बैठकर अपना पल्लू उस पर ढांक देती है। बुद्धपुरुष इस तरह शिष्य को तैयार करते हैं। यह बड़ी मर्यादा है। उनका अपना अनोखा विवेक है।

पड़ौसी के यहां बुश रेडियों में बिनाका गीतमाला बजे और अपने यहां क्यों न बजे? ये सारे कारण साधकों को समझने चाहिए। इसका पहला कारण उसने रेडियो शुरू किया है, हमने शुरू किया ही नहीं है! कईयों ने जीवन का अध्यात्म शुरू ही नहीं किया है! फकीरों ने शुरू किया है तो पुराने मोडल भी बजते हैं! दूसरा कारण, सिलोन में बिनाका बजे, प्रसारित हो; बाजूवाला सुने, हमें न सुनाई दे। कारण ये कुछ भी हो सकता है कि रेडियो शुरु किया हो लेकिन स्टेशन ठीक से मिलाया न हो।।

'रामायण' में सबकुछ है पर अपना रेडियो बंद है! अत: हम तुलसी संगीत पकड़ नहीं सकते। या हमें स्टेशन बराबर मिले नहीं है। राम के बदले काम का स्टेशन मिला है। बोध के बदले क्रोध का स्टेशन मिला है। या हमारा रेडियो अंदर से बिगड़ गया है। राजमार्ग पर अकस्मात होते हैं, पगदंडी पर नहीं। साधुओं ने संसार को पगदंडी-शोर्टकट दी है। राजेश व्यास 'मिस्कीन' कहते हैं-

क्यां गयां चकचकतां बेडां, पाणियारां क्यां गयां?

फ्रीजवासीओ, तरसना ए सहारा क्यां गया?

गाम आखुं गर्व करतुं'तुं दिवसमां सो वखत,

गामना वडलासमा ऐ भाईचारा क्यां गया?

'रामायण'में वह पूरे प्रकरण का नाम 'अहिल्याद्धार' है। पर यह शब्द कितना ठीक है? अहिल्या उद्धार की नहीं, स्वीकार की जरूरत थी। कोई उसका स्वीकार कर समाज में पुन: प्रतिष्ठित करे जो सब को छोड़कर गए थे। अत: अहिल्या स्वीकार हुआ है। उद्धार तो शबरी का हुआ है। स्वीकार पतित का करना होता है, पुण्यशाली का स्वीकार तो सभी करते हैं। अहिल्या पतित हुई है। उनका स्वीकार-उद्धार किया। अत: राम 'पतित पावन' कहलाए; इससे पहले नहीं।

शबरी पतित नहीं है। उन्होंने तो मानव को पावन बनने के लिए पगदंडी दी है। सती शबरी ने जीवहिंसा बंद करने के लिए कहा। उनका सतीत्व अर्थात् साधुत्व बरकरार है। दोनों धैर्यशील है। 'मेरा राम आयेगा', ऐसा मेरे गुरु ने कहा है। उसने राम देखे भी नहीं है। यह शबरी की उच्च भूमिका है। राम आए तब शबरी ने कहा, आप आए इसका आनंद है पर पहला आनंद यह है कि मेरे गुरु के वचन सच्चे हुए। शबरी ऐसी संत है। नरसिंह महेता याद आते हैं -

ऊंची मेडी ते मारा संतनी रे ...

तो, अहिल्या ऊंचे माले से नीचे आई, क्योंकि ब्रह्मभवन उसका मूल स्थान था। शबरी बिलकुल अछूत, दलित, अस्पृश्य है। उसकी भूमिका निम्न है पर उसकी मंज़िलबहुत ऊंची थी। अहिल्या का प्रभु ने स्वीकार किया उस वक्त वह इतने आनंद में डूब गई कि हरि को पानी भी न दे सकी। गंगा का किनारा था, पंपा सरोवर था। आनंद में डूब जाने के कारण प्रभु को कुछ धर नहीं पाई। ब्रह्मानंद में डूब गई। शबरी ने जैसे थे वैसे बैर राम को दिए और राम जूठे बेर खाते हैं। यह प्रेम का संबंध है।

अपने विरोधियों के प्रति भी करुणा जगे वही हृदयधर्म है

'मानस-धरम' सद्विचार को केन्द्र में रखकर हम सब संवादी सूर में सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा कर रहे हैं तब यहां 'मानस-धर्म' माने हृदयधर्म है। मुझे एक विचार आता है, हृदय बायीं ओर ही क्यों? दायीं ओर ही क्यों नहीं? ब्रह्मा की सृष्टि में यह पूर्व आयोजित रचना होती तो वह शक्य भी हो! आप समझ सकते हैं, इसके कारण तजज्ञ ही दे सकते हैं। पर कुछ ओर दृष्टि से सोचे तो बायां हिस्सा ही पसंद करने का कारण क्या होगा? जब हृदय के धर्म की बात करते हैं तब -

पोता सौ पोतातणां पाळे पंखीडां,

बचडां बीजानां को'क ज सेवे कागडा!

सीधे हो तो सभी ममता रखे। सब पसंद करे, आदर दे, आग्रह करे। या ममता के कारण, स्वार्थ के कारण अपने माने। यह कारण भी हो सकता है। पर हृदय का धर्म तो वही माना जायगा कि जो वाम है, जो विपरीत है, जो टेढ़े हैं, जो हमारे स्वभाव से सहमत नहीं है; हमारे कथन अस्तित्व के साथ सहमत नहीं है, हमारा होना ही जिसे पसंद नहीं है,

उसका भी स्वीकार है। प्लीज़, सोचिए। इस पंक्ति में 'संकट' शब्द है। पांच व्यक्तियों का जो नामोल्लेख है इन सभी ने अनेक प्रकार के संकट सहन कर धर्म को धारण किया। ऐसे संकटों की श्रेणी पर हम विचार करते थे। मेरी दृष्टि से धर्म माने सत्य, प्रेम और करुणा। कितने प्रकार के संकट हमारे जीवन में आते हैं? मैंने 'हनुमानचालीसा' का संदर्भ भी कहा कि संकट से हनुमान छुड़ाते हैं। मैं प्रसन्न हुआ, ओबामा भी रखते हैं! न रखे तो भी प्रसन्न हूं। हनुमान हो ही ऐसा कम्पलसरी नहीं है। यदि रखे तो मैं अधिक प्रसन्न रहूं। पर जाते-जाते कहते गए कि जब तक धर्म स्वतंत्र रहेगा तब तक देश बहुत प्रगति करेगा। इस देश में धर्म की स्वतंत्रता तो है ही, है ही, है ही! छोटे-बड़े नो बोल डाले इसकी भी क्या आलोचना करे? आलोचना हो इसके लिए भी आपके पास कुछ होना चाहिए। व्यासपीठ ने हंमेशा यही बात कही है। आपकी स्वतंत्रता बरकरार रहे, धर्म या आपकी निजता को लेकर ही। पराधीनता सबसे बड़ा दु:ख है। तुलसी का विधान है -

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं।।

कल भी मैंने कहा था कि राम के राज्याभिषेक के बाद की सभा में राम ने स्पष्ट कहा था कि मैं राजा हूं और मेरी वाणी में कहीं चूक हो, अनीति हो तो मेरा छोटे से छोटा प्रजाजन अयोध्या-सम्राट राघवेन्द्र को रोक सकता है। यह देश का रामकालीन स्वातंत्र्य है।

मेरे पास जो प्रश्न आते हैं तो मुझे आनंद होता है कि व्यासपीठ ने जो स्वातंत्र्य दिया है उसका आप सदुपयोग करते हैं। लोग निर्भीकता से पूछते हैं। यही होना चाहिए। यहां से जो कहा जाता है इसका स्वीकार ही हो यह जरूरी नहीं है। सोचना भी जरूरी है।

एक तो मानव पर धर्मसंकट। दूसरा है प्राणसंकट। तीसरा है अर्थसंकट। और चौथा है पारिवारिक संकट! पांचवा है राष्ट्रसंकट। तो जो पांच पात्र है उनमें चार राजा और एक ऋषि है। शिबि, हरिश्चंद्र, रतिदेव, बली और एक ऋषि है। चार राजर्षि, एक ब्रह्मर्षि है। इन पांचों ने अनेक प्रकार के संकट सहन कर धर्म धारण किया है।

धर्म सत्य, प्रेम, करुणा हो तब हृदयधर्म, प्रेमरूपी, करुणारूपी हृदयधर्म और उनके मार्ग में आते हुए पांच संकटों की चर्चा 'मानस' के आधार पर करते थे कि भरत चित्रकूट जाते हैं तब पहला संकट आया। रामकथा मंदाकिनी और चित्रकूट चित्तचारु। अंत:करण चतुष्टय है-मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। इसमें तुलसी चित्रकूट को चित्त का दरज्जा देते हैं। हमें कहां तक पहुंचना है? चैतसिक प्रसन्नता या रामप्राप्ति कहिए। मैंने घूंटकर कह दिया यही परमात्मा है। राम माने सत्य, राम माने प्रेम, राम माने करुणा। चित्रकूट की प्राप्ति माने पादुका की प्राप्ति। इस प्राप्ति में हृदयधर्मियों को जो जो संकट आते हैं उनकी हम 'मानस' के आधार पर गणना करते थे। पहला संकट हमने कोई व्रत लिया हो तो व्रत भंग करना पड़े। अत: व्रत ले, जाहिर न होने दे। आपके व्रत की जानकारी हो जायगी तो तोड़ने के प्रयत्न शुरू हो जायेंगे।

हृदयधर्म की यात्रा में दूसरा संकट समाज है। निषाद का समाज, शृंगबेरपुर का समाज। भरत को लेकर भयानक गलतफहमी रखता है कि यह आदमी संत नहीं है। यह राम को मारकर निष्कंटक राज्य करना चाहता है। कैकेयी पुत्र है। ऐसा कहकर भरत के साथ संघर्ष करने खड़ा है। दूसरा संकट समाज की विपरीत सोच। भरतजी आरपार निकल गए क्योंकि उनके पास सत्य था। यात्रा बराबर थी। हृदयधर्म बराबर था। तीसरा संकट, भरद्वाज ऋषि के आश्रम में भरद्वाज भी भरत की कसौटी करते हैं। ये सब छोड़कर आया है। देखें तो सही इसका त्याग कितना प्रबल है? साधुसमाज भी साधक की ऐसी कसौटी करता है।

निष्कुलानंदजी कहते हैं, 'त्याग न टके रे वैराग्य विना।' नरेन्द्रबापू की एक व्याख्या थी कि त्याग माने छोड़ देना नहीं। जब उपनिषद कहे त्याग से ही अमृत मिलेगा वह त्याग कौन-सा? कमल असंग है उसी तरह रहना है। त्याग माने शुभ का स्वीकार करना। हम शाम को बैठ हो, अपरिचित हो, और एक चेक दे जाय! नाम? तो कहे, हमें नाम नहीं चाहिए। किसे प्रसिद्धि चाहिए? जब त्याग की बात करते हैं तब अमुक वस्तु परिवर्तित करने से त्याग नहीं होता। हाथ से छूटे वह त्याग और हृदय से छूटे वह वैराग्य। ऋषि भरतजी के त्याग की कसौटी करते हैं। साधक की कसौटी जब अमृततत्त्व प्राप्त साधु करते हैं! निष्कुलानंदजी कहते हैं -

त्याग न टके रे वैराग विना, करीए कोटि उपाय जी;
अंतर ऊंडी ईच्छा रहे, ते केम करीने तजायजी.

साधुसमाज ने भरद्वाजजी और भरतयात्रा की कसौटी की। 'मानस' में लिखा है कि उस समय रिद्धि-सिद्धि का प्राकट्य हुआ। मुनि से कहा, भरतजी जैसे अतिथि है। हमें आतिथ्य का अवसर दीजिए। फिर तुलसी ने वहां मर्यादा से वर्णन किया है। तमाम भोग खड़े किए ऐसा लिखा है। उनमें से कुछेक लोगों ने अपनी रुचि अनुसार भोग में आराम किया। जैसे चकवा-चकवी रात में वियोगी हो जाते हैं उसी तरह भरत भी भोग से वियोगी ही रहे। तुलसी ने ऐसा दृष्टांत दिया। 'संपति चकहि', भरद्वाजजी ने तप प्रभाव से खड़ा किया वह समस्त वैभव वह चकवी थी। भरत चकवा थे। महात्मा आश्रमरूपी पिंजरे में उन्हें एकत्र करना चाहते थे कि संपत्ति-संत एक-दूसरे से लिपट जाए! पर पूरी रात संपत्तिरूपी चकवी भरतरूपी चकवा पर प्रभाव न डाल सकी। भरतरूपी चकवा ने संपत्ति के सामने दृष्टि तक नहीं की। पूरी रात स्मरण में बिताई है। जितना हरिस्मरण बढ़ायेंगे उतने पतन से बचेंगे। भजनानंदी पुरुषों का एक सर्वसमान अनुभव है कि भजन आदमी को आखिरी घड़ी में पतन से बचाता है। थोड़ा समय मिले तो भजन कीजिए।

तुलसीदासजी ने 'दोहावली' के दोहे में कहा है कि खराब समय आयेगा तब आप सात का आश्रय लें। आपका खराब समय निकल जायेगा। यह पांच सौ साल पहले का दोहा है। विक्रम समय सबके जीवन में आता है। मैंने तो 'मानस' के आधार पर सूत्र पकड़ रखा है कि विष माने और कुछ नहीं पर अपने जीवन में आती विषम परिस्थितियों का नाम ही विष है। जो पी लेगा वह शंकर बन जायेगा। तुलसी लिखते हैं -

तुलसी असमय के सखा धीरज धरम बिबेक।
साहित साहस सत्यव्रत राम भरोसो एक।।

खराब समय में धैर्य बनाए रखना कठिन है। मुझे युवा भाईयों-बहनों को इतना ही कहना है कि अमुक समय में धैर्य रखना चाहिए। अपना दूसरा धर्म है और वह हृदयधर्म, अपना दिल, अपना आत्मबल! अपना धैर्यबल विपत्ति में हमें मदद करे। तीसरा विवेक। सयाने और अनुभवियों के पास बैठकर जो विवेक हमें प्राप्त हुआ हो वही विवेक हमें हमारे खराब समय में मित्र बनकर रहता है। हमारा विवेक हमें मदद करे। साहब, यह प्रेक्टिकल लगे तो इस पर सोचियेगा।

'तुलसी असमय के सखा धीरज धरम बिबेक।' फिर बड़ा शब्द है 'सहित।' अच्छा साहित्य मित्र बनकर मदद करेगा। कोई अच्छा उपन्यास अच्छा लेख, अच्छी कविता, कोई शे'र, कोई गज़ल, किसी अच्छे शास्त्र का श्लोक, अपनी विविध भाषा का लोकसाहित्य ये सभी

हमारे खराब समय के सखा है। अत: आदमी साहित्य के प्रति रुचि ले यह जरूरी है। आप 'रामायण', 'गीता' पढ़े, अच्छा है। पर हमारे पास विपुल साहित्य है। इच्छा बरकरार रहनी चाहिए। मैं प्रसन्न हूं कि आज का साहित्य मानव के जीवन को बल देता है। कितने सुंदर व्याख्यान-शिबिर होते हैं! युवाओं को इनमें से लेना है। धीरज, धर्म, विवेक, साहित और पांचवां साहस। उस वक्त किया साहस। विवेकशून्य साहस नहीं। साहित्य द्वारा प्राप्त समझ से किया गया साहस!

तारी हाक सूणी कोई ना आवे तो तुं एकलो जाने रे ...

•

जिंदगीना रसने पीवामां करो जलदी 'मरीझ',
एक तो ओछी मदिरा छे ने गळतुं जाम छे.

साहस हमारे असमय का सखा है। छठ्ठुं सूत्र बहुत कठिन है। यह है सत्यव्रत। ऐसे समय में हमें हमारा सत्य जतन के साथ रखना है। कोई स्वीकार करे या न करे अपना भीतर कहे कि मैं यहां सच्चा हूं, उस समय ईमानदारीपूर्वक स्वीकार भी कर लेना चाहिए। दुश्मन हो तो भी क्या? उसने सत्य कहा है।

शिबि की कथा में अग्नि कबूतर बना। इन्द्र बाज बना। शिबि और बाज के संवाद धर्म को केन्द्र में रखकर हुए हैं। कभी बाज तो कभी शिबि सच्चा लगता है। ऐसा धर्मसंवाद है। धर्म में संवाद होना ही चाहिए। सत्य विषयक जो उद्घोषणा होती है, 'हे राजाश्रेष्ठ शिबि, यह जगत आहार में से उत्पन्न हुआ है, आहार से बड़ा होता है और मृत्यु शरण होता है। कबूतर मेरा आहार है, उसे छोड़ दे।' शिबि ओफर करता है, 'तुझे यह दूं, भक्ष्य दूं। तुझे पेट ही भरना है न! तू मागे वह सब दूं।' तो कहे, 'विधि ने मेरी खुराक कबूतर रूपी दी है।' समाज के कई बाजों को कबूतर ही खाना है! यह समाज का दुर्भाग्य है! दोनों के बीच मार्मिक दलीलें चलती है। शिबि कहता है, आपको परमधर्म की खबर नहीं है कि जो आश्रय में आया हो उसका त्याग नहीं करना चाहिए।

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि।।

'शरणागत है। खुराक का प्रश्न है। तो तू कहे तो कुछ और दूं।' पर बाज दलील करता है, 'कबूतर ही मेरी खुराक है।' 'जो शांति के चाहक है उसे ही तुझे मारना है, खाना है? जो शांति का संदेश विश्व में पहुंचाये उसे खाना है? उसके विकल्प में क्या दूसरा कुछ नहीं हो सकता?' सुंदर दलीले हैं। बाज पक्षी कहता है, 'तो तेरे शरीर का मांस मुझे दे।' मुझे यह थोड़ा अरुचिकर लगता है। फिर तराजू रखते हैं। उसके एक पल्ले में कबूतर और दूसरे पल्ले में शिबि के शरीर का मांस रखते हैं। यह तो परीक्षा थी। पल्ला ऊपर नहीं उठता है। वजनी ही रहता है। अंत में शिबि कहता हैं, मैं पूरा का पूरा उपर बैठ जाता हूं। शिबि तैयार होता है। तब दोनों देवता प्रकट होते हैं। अग्नि जो कबूतर बना था, उसे हम भजन में होलो कहते हैं। और इन्द्र जो बाज बना था वह प्रकट होता है।

तो सत्यव्रत; सत्यवादी मनुष्य का सत्य खराब समय में उसका मित्र बनकर खड़ा रहता है। सातवां मित्र, 'रामभरोसो एक।' विश्वास, श्रद्धा, भरोसो, यकीन, ट्रस्ट ये सभी अवस्था भेद से भिन्न अर्थ देते हैं। इसमें 'भरोसा' शब्द अद्भुत है। वैष्णव-पुष्टि मार्ग का तो प्राण जैसा शब्द है, 'भरोसा।'

दृढ इन चरनन केरो भरोसो, दृढ इन चरनन केरो,
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिन, सब जग मांहे अंधेरो ...

ओलिया निझामुद्दीन अपने स्थान पर बैठे हैं। खास शिष्य अमीर खुशरों की ड्यूटी थी कि सायंकाल पर धूप करना है। उसमें लोबान डालना है, जिससे यह स्थान सुगंधित हो जाय। एक दिन किसी कारणवश चूक हो गई और ठीक वक्त पे धूप नहीं हो सका। अचानक नित्यक्रम चूक का ख्याल आया। जल्दी करने गया इतने में लोबान की खुश्बू आई। अमीर चारों ओर देखता है। पीर के पास अमीर खुशरो जाता है, 'मालिक, बेअदबी माफ कीजिए। आज मैं नित्यक्रम चूक गया! आपको उठना पड़ा। ठीक वक्त पे धूप करना पड़ा।' तब पीर ने कहा कि 'मैं तो वहां से खड़ा ही नहीं हुआ!' 'तो फिर धूप कैसे हुआ? यह लोबान?' 'अमीर, तू बाजार से जो लोबान लाता है यह वह नहीं है। यह मेरे भरोसे का धूप है। मेरी बंदगी का यकीन है।' मेरा विश्वास है। अंधविश्वास नहीं है। अंधविश्वास में दुर्गंध होती है। विश्वास तो पंद्रह आंखोंवाला शंकर है।

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा: स्वान्त:स्थमीश्वरम् ।।

युवा भाईयों और बहनों, अपना गुणातीत भरोसा, भय और प्रलोभन से मुक्त भरोसा खराब समय का साथी है। 'सर्वे भवन्तु सुखीन:।' इस प्रदेश के हम मनुष्य है। अपने यहां सूरज पहले उगता है। हम उजाले के मनुष्य है। बाप, खराब समय कभी न आए और आए तो धीरज, धरम, विवेक, सहित, साहस, सत्यव्रत और रामभरोसा मदद करे।

भरत की चित्रकूटी यात्रा त्यागी है या दंभी? यह तीसरा धर्मसंकट और पूरी रात भरद्वाजजी निरीक्षण करते रहे। भरत पर संपत्ति प्रभाव न डाल सकी। न तो भरतजी संपत्ति की ओर आकर्षित हुए। स्मरण में रात बीती। जिसका स्मरण पक्का होगा उसे पतन की घड़ी से प्रभु बचा लेंगे।

हृदयधर्म की हम बातें करते हैं तब ऐसे संकट तो आयेंगे ही। पहला संकट व्रतभंग। दूसरा, संकट के बीच आता समाज साधक के लिए गलतफहमी पैदा करे। तीसरा, पंच ऋषिमुनि हमारे त्याग की कसौटी करे। चौथा सुरी संकट है। भरत की चित्रकूट यात्रा में इन्द्र और देवता इकठ्ठे होकर विघ्न करने की तैयारी करते हैं। यदि भरतजी रामजी तक पहुंचेंगे तो राम को मनाकर पुन: अयोध्या लायेंगे। यदि राम अयोध्या लौटेंगे तो आसुरी राक्षसों ने हमारे भोग छीन लिए हैं तो क्या हमारी दशा ऐसी की ऐसी रहेगी? रावण को कौन मारेगा? अत: देवताओं ने राम-भरत मिलाप न हो ऐसे विघ्नों की तैयारी की, जो सुरीतत्त्व कहलाए। भरतजी की यह सत्यधर्म, प्रेमधर्म, करुणाधर्म, हृदयधर्म की यात्रा ऐसी परिपक्व निकली कि जिन देवताओं ने सरस्वतीजी को निमंत्रित की कि भरत-राममिलाप न हो ऐसा कुछ कीजिए। तब सरस्वतीजी ने इन्कार कर कहा, इन्द्र, तुझे सत्य नहीं दिखाई देता। मैं मंथरा की बुद्धि भ्रष्ट कर सकूं पर भरत की बुद्धि ना बदल सकूं। भरत पर से सुरी विघ्न टल गया। आखिरी संकट यह किसी भी अध्यात्ममार्गी के जीवन का शायद सत्य है। आपके बिलकुल निकट के तत्त्व आपका विरोध करे, आपको मार डालने के प्रयत्न करे। यह 'रामायण' में लिखा गया है। आप प्रसंग से परिचित हैं। भरत बिलकुल चित्रकूट आश्रम के द्वार पहुंचते है।

सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उत्तर दिसि देखत भए।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गए।।
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे।।

ऋषिमुनि आए हैं। भगवान उत्तर दिशा की ओर देखते हैं। यात्रा साउथ की करते हैं पर दृष्टि उत्तर में है। कृष्ण जहां-जहां जाते हैं पर उनकी स्मृति व्रज में है, गोकुल में है। हरीन्द्रभाई दवे लिखते हैं -

फूल कहे भमराने, भमरो वात वहे गुंजनमां;
माधव, क्यांय नथी मधुवनमां.
शिर पर गोरसमटुकी, मारी वाट न केमे खूटी,
अब लग कंकर एक न लाग्यो गयां भाग्य मुज फूटी.

उसके हाथ से लूट जाना असीम प्राप्ति थी। वह कंकड मारे और मटकी तोड डाले तो भाग्य संवर जाता। मेरा राम उत्तर दिशा में देखता है। राम को अवध की याद आए तो रो पड़े। यह कथा तुलसी ने लिखी है। धूल उड़ती है। पशु-पक्षी डरडरकर चित्रकूट के आश्रम में आते हैं, तब भगवान राम खड़े हो गए और कहते हैं, 'लक्ष्मण, सब क्या हो रहा है? चित्रकूट में कोई हिंसक आया है? पशु-पक्षी क्यों भयभीत है?' इतने में कौल-कीरात दौड़ते आए। उन्होंने राम को समाचार दिए, राजकुमार भरत अयोध्या लेकर पधार रहे हैं। भगवान आनंदित हो गए। दूसरे ही क्षण चिंतित हुए कि भरत क्यों आता होगा? भगवान को चिंतित देखकर लक्ष्मण का दबा आक्रोश प्रकट होता है, 'भगवन्, माफ करना। यह भरत कैकेयी पुत्र है। वह निष्कंटक राज्य करना चाहता है अत: चतुरंगी सेना लेकर आपको अकेला मानकर यहां आया होगा। प्रभु, मैं भरत सहित पूरी अयोध्या को समाप्त कर दूंगा।' मेरी व्यासपीठ यह अर्थ करती है कि जब चित्रकूट बिलकुल निकट हो तब समझना कि आपके परिवार की निकटतम व्यक्ति आपका नाश करने के लिए विचार करती है। तब धीरज बंधी रहे तो समझना कि अब चित्रकूट एकदम निकट है। उस समय तक टिके रहना है। अल्लाह बचाए। वहीं साधना की कसौटी है।

हृदयधर्म के पांच संकट धर्म, परिवार, प्राण, राष्ट्र और अर्थसंकट। हृदय बायीं ओर इसीलिए हैं कि हृदय का धर्म हमारे अनुकूल रहे। अत: धड़कनें न लगाए। अपने विरोधियों के लिए करुणा जगे अत: उसे बाई ओर रखा है। वही हृदयधर्म है।

रामकथा के क्रम में नाममहिमा हुई। भरद्वाजजी के प्रश्न के उत्तर में याज्ञवल्क्य महाराज ने शिवचरित्र की पूरी कथा सुनाई। भगवान शिव और शैलजा के ब्याह का वर्णन किया। इसके बाद कार्तिकेय का जन्म दिखाया। उन्होंने ताड़कासुर नामक राक्षस का नाश कर दैवी विचार के मनुष्यों को पुन:स्थापित किया। फिर वह शिव कैलास के वेदविदित वटवृक्ष की छांव में अपने हाथ से मृगचर्म बिछाकर सहज आसन पर बिराजमान है।

शैलजा ब्रह्मजिज्ञासा करती है, 'प्रभु, अभी भी मन में असमंजसता है कि रामतत्त्व क्या है?' शिव प्रसन्न हुए। रामतत्त्व क्या है इसका व्यापक और निराकाररूप वर्णित किया। यद्यपि ईश्वर को कार्य-कारण सिद्धांत लागू नहीं होता। फिर उनके आगमन के कुछेक कारण बताए। प्रतापभानु रावण बना। अरिमर्दन कुंभकर्ण हुआ। धर्मरुचि विभीषण बना। तीनों भाईयों ने तप कर अगम, दुर्लभ वरदानों की प्राप्ति की है। रावण ने वरदानों का दुरुपयोग शुरू किया। गाय के रूप में धरती रोती-रोती ऋषिमुनियों के पास गई। देवताओं के पास गई। आखिर में ब्रह्मा के पास गई। ब्रह्मा ने कहा, एक ही उपाय है। हम सब साथ में परमतत्त्व की पुकार करें। प्रभुप्राकट्य के लिए एक सामूहिक आर्तनाद उठा। आकाशवाणी हुई कि 'धैर्य धारण कीजिए।' मैं अहेतु अयोध्या के रघुवंश में जन्म लूंगा। ईश्वरप्राप्ति का एक मार्ग यह भी है। प्रथम, पुरुषार्थ। मानवी के पुरुषार्थ की एक सीमा होती है। पुरुषार्थ की सीमा के बाद पुकार होती है। पुकार के बाद भी शायद सभी इन्स्टन्ट ना हो। तीसरा पडाव है भगवतप्राप्ति की प्रतीक्षा। पुरुषार्थ, पुकार और प्रतीक्षा तीनों का योग माने रामप्राकट्य।

अयोध्या का साम्राज्य। सूर्यकुल रघुवंश दशरथजी। उपासना-ज्ञान-कर्म सब उनमें है। सुंदर गृहस्थ जीवन है। परंतु संतान नहीं है। समाज तो राजा को कहे पर राजा किसे कहे? दिल की पीड़ा व्यक्त करे। तुलसी ने भारतीय संस्कृति के अनुरूप एक रास्ता निकाला कि राजा आज गुरुद्वार गए हैं। युवा भाईयों-बहनों, कभी कहीं से जवाब न मिले तब कहीं आपकी श्रद्धा का कोई केन्द्र हो जो आपका शोषण न करता हो पर पोषण करता हो, उसके पास जाकर बात करे। वशिष्ठजी के चरण पकड़कर हृदय की बात कही। वशिष्ठजी ने कहा, धैर्य धारण कीजिए। एक नहीं, चार पुत्रों के पिता बनोगे। परंतु आपको पुत्रकामेष्टि यज्ञ करना पड़ेगा। अपने यहां पुत्रप्राप्ति की प्रक्रिया को यज्ञ का दरज्जा दिया है। यह देश अद्‌भुत है। स्नेह सह आहुति दी। यज्ञपुरुष ने प्रसाद की खीर का चरु वशिष्ठजी को दिया। कहा, महाराज को कहियेगा, रानियों के बीच यथायोग्य खीर को बांटे।

राजा ने रानियों को बुलाकर यथायोग्य प्रसाद बांटा। रानियां सगर्भा हुई। आनंद के शगुन होने लगे। पंचांग अनुकुल हुआ। त्रेतायुग, चैतमाह, शुक्लपक्ष, नौमीतिथि, भौमवासर, मध्याह्न का सूर्य, हरि प्राकट्य की बेला; एक के बाद एक स्तुति हुई। हरिप्राकट्य का समय। भगवान कौशल्या के प्रसाद में प्रकट होते हैं। अद्‌भुत रूप है!

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्‌भुत रूप बिचारी।।

प्रभु प्रकट हुए। माँ को ज्ञान हुआ कि यह ब्रह्मतत्त्व है। संतो से सुना है कि कौशल्या ने मुंह फेर लिया, 'आप पधारे, आपका स्वागत। पर आप वचन चुक गए हैं। आप आज नररूप नहीं, नारायण रूप लेकर आए हैं। मुझे चतुर्भुज नहीं, द्विभुज चाहिए। हमें मानवता के रूप में हरि चाहिए।' इस देश की माँ ईश्वर से कैसे मनुष्य बने यह सिखाती है! अपनी गोद के अनुसार ईश्वर को बना देती है। भक्ति में विराट को अपनी योग्यता अनुसार गोद में लेना हैं। प्रभु नवजात शिशु जितने हुए। श्रीहरि, परमतत्त्व, परमात्मा कौशल्या की गोद में सहज बालसुलभ रुदन करते हैं। सभी रानियों ने रुदन सुना। सभी संभ्रम स्थिति में है। माँ की गोद में अलौकिक बालक देखा। सेवक को पता चला। दासियां दौड़कर आई, 'महाराज, बधाई हो, आपके यहां पुत्रजन्म हुआ है।' दशरथजी ने कहा, 'जल्दी गुरु को बुलाईए। यह ब्रह्म है कि भ्रम है?' वशिष्ठजी पधारे हैं। अलौकिक रूप देखकर संकेत दिया कि आपके यहां परम का अवतरण हुआ है। यह सुनकर दशरथजी को परमानंद हुआ। त्रिभुवन को पता चला। जयजयकार हुआ। रामजन्म की बधाई और आज की कथा को विराम। बधाई हो, बधाई हो।

अच्छा साहित्य मित्र बनकर मदद करेगा। कोई अच्छा उपन्यास, लेख, कविता, शे'र, ग़ज़ल, शास्त्र का श्लोक, हमारी भाषा का विध-विध लोकसाहित्य ये सब हमारे खराब समय के साखी हैं। अत: मनुष्य को साहित्य में रुचि होनी चाहिए। आप 'रामायण', 'गीता' पढ़िए, अच्छा है। पर अपने पास विपुल साहित्य है। मैं प्रसन्न हूं क्योंकि आज का साहित्य मनुष्य को बहुत बल प्रदान करता है। कितने सुंदर प्रवचन, शिबिर होते हैं! युवाओं को इनमें से लेना चाहिए।

कथा-दर्शन

- अध्यात्मजगत तो छाप–तिलक मिटा देने की क्रांतिकारी पुकार है।
- विश्व में व्यवस्थारूप आई हुई महान विभूति अतिविचित्र होती है।
- बुद्धपुरुष की चरणधूलि विश्व के सभी मानसिक रोग की संजीवनी है।
- इक्कीसवीं सदी का धर्मगुरु हंसता हुआ होना चाहिए।
- हनुमानतत्त्व सार्वभौम है।
- आपका हृदय बेवजह प्रफुल्लित हो उस स्थिति का नाम परमात्मा है।
- जितना हरिस्मरण बढ़ेगा इतना पतन से बच पाओगे।
- भजन के बदले कुछ भी नहीं होना चाहिए, क्योंकि भजन सब से बड़ी सेवा है।
- जिनका स्मरण पक्का होगा उसे प्रभु पतन के समय बचा लेगा।
- मनुष्य गाना सीख ले तो युद्ध बंद हो जाय, संघर्ष रुक जाय।
- स्वयं भजन कीजिए, औरों को भोजन करवाइए।
- वेश बदल सकते हैं, वाणी नहीं बदल सकती।
- हमें हृदय का धर्म जीवित रखता है।
- निंदा और स्तुति के बीच संतुलन रखना चाहिए।
- हाथ में से छूटे वह त्याग, हृदय से छूटे वह बैराग।
- पुरुषार्थ, पुकार और प्रतीक्षा तीनों का योग माने रामप्राकट्य।
- पुत्री पिता का श्वास है और पिता पुत्री का विश्वास है।
- वस्तु जहां गुम हुई हो वहीं से मिल सकती है।
- जीवन में समस्या आने से पहले ही समाधान आ जाता है।
- भजन कर लेना हो और प्रसन्नता प्राप्त करनी हो तो सबसे एक प्रामाणिक डिस्टन्स रखना चाहिए।

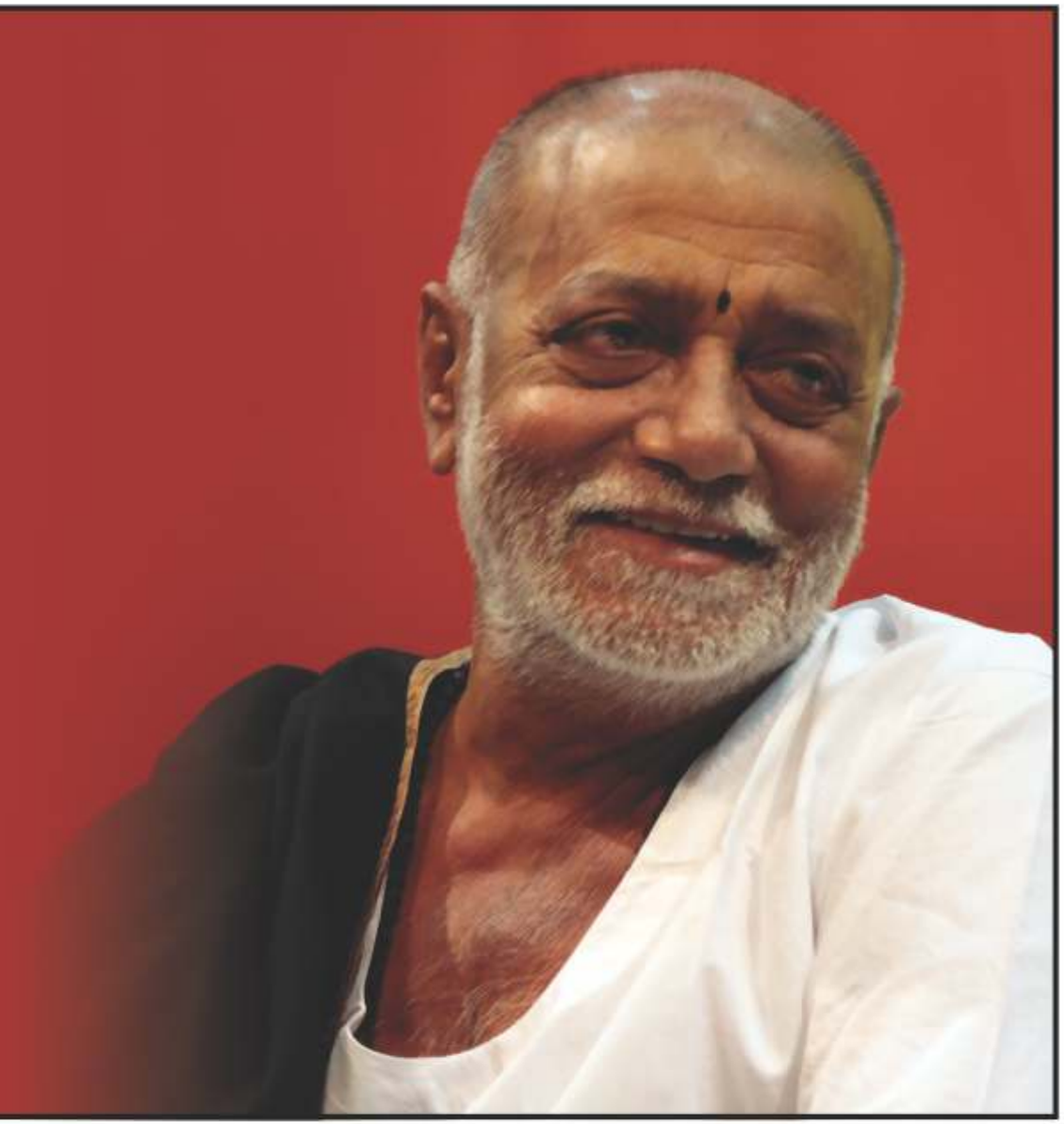

हमें हृदय का धर्म जीवित रखता हैं

हम 'मानस-धरम' की थोड़ी सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा कर रहे हैं। एक युवक ने पूछा है, 'मैं इन्जीनीयर हूं और मैं जिसे प्रेम करता हूं, जिसके साथ मुझे ब्याह करना है वह लड़की डोक्टर है और वह ईश्वर में नहीं मानती। हम अच्छे मित्र है। वह आपकी कथा को भी नहीं मानती। हमारी अच्छी मैत्री है। हमारे भावनात्मक संबंध है। हम ब्याह करे और तकलीफ़ में आ जाय ऐसा कोई दूसरा मुद्दा नहीं है। पर मैं वर्षों से कथा सुनता हूं। मैं ईश्वर में मानता हूं पर वह नहीं मानती।' युवक, मुझे इतना ही कहना है, ईश्वर और कथा को सादर एक ओर रख। वह तुझे मानती हो तो ब्याह कर ले! आगे बढ़! अपने यहां दासी जीवण का प्राचीन भजन है -

जोईजोईने ओरीए जात्युं, बीबां विण पडे नहीं भात्युं.
मांड मळी छे एकांतुं रे, मारा मावा मोले आवजो.

आप परस्पर में विश्वास रखते हो; विचार में लगी हो तो फिर कोई हर्ज नहीं है। ईश्वर और कथा में न माने तो उसे स्वतंत्रता दीजिए।

दूसरी जिज्ञासा है; बापू, संत स्पर्श से लंकिनी भव पार हो गई तो पूर्व में जो ईश्वर का चौकीदार था वह कैसे डूब गया? लंकिनी तैर गई, लंका का मालिक कैसे डूब गया?' तैरना भी महत्त्वपूर्ण है। किसी में पूर्णरूप से डूब जाना यह भी एक अवस्था है। गुजराती में शे'र है -

अमे तो समंदर उलेच्यो छे प्यारा,
तमे फक्त छबछबियां कीधां किनारे.
अमोने मळी छे जगा मोतीओमां,
तमोने फक्त बुदबुदा ओळखे छे.

- शून्य पालनपुरी

डूबने की भी महिमा है, तैरने की भी है। साधना के दो मार्गी है। कोई डूबना चाहे। रावण डूबा, 'तासु तेज समान प्रभु आनन।' 'मानस'कार कहते हैं, रावण के निर्वाणक्षण में जो तेज था वह परमात्मा के चेहरे में विलीन हुआ, डूब गया। जिसे सारूप्य मुक्ति भी कहते हैं। डूबना भी महत्त्वपूर्ण है और तैरना भी।

आप रावण को नामशेष कैसे कर सकते हैं? बिना कर्ण के कृष्ण की कल्पना नहीं हो सकती। 'महाभारत' में कृष्ण ने जो सन्मान कर्ण को दिया, ऐसा किसी दूसरे को नहीं दिया है। एक स्थान पर कृष्ण कहते हैं कर्ण को कि तेरे जैसा सत्यवादी मैंने देखा नहीं। इसका अर्थ यह है कि कृष्ण स्वीकार करते हैं, मैं कई बार असत्य बोला हूं। बिना कंस के कृष्ण की कल्पना कैसे हो सकती है? कभी सापेक्ष लगता है। रावण तो बड़ा स्थान रखता है। मुझे गुरुकृपा से अवसर मिलता है तो मैंने रावण के दस सिर माने 'मानस' रावण की दस कथाएं की है। मैं नब्बे दिन इस पर बोला हूं। मैं रावण को अवतार मानता हूं। भुशुंडि ने कहा, रावण महात्मा है। रावण की अनेक प्रकार की मनोवृत्ति हो सकती है। मेरी तलगाजरडी आंख से तो सीता अपहरण यह शायद रावण की विचारधारा भी हो सके। एक घरेलू दृष्टांत लें। भगवान की कृपा हो, आपका बहुत बड़ा मकान हो और व्यवस्था खातिर आपको वोचमेन रखना पड़े, द्वारपाल रखना पड़े। कईयों के यहां बीस-पच्चीस वर्ष से वही द्वारपाल होते हैं! और साहब, गृहस्थ की पुत्री हो या पुत्र, उसके माता-पिता से भी ज्यादा प्यार वो करते हैं। वे उन्हें बहुत दुलार देते हैं और बच्चे भी उनसे इतना ही प्यार करते हैं कि गृहस्थ की कन्या बिदाई के समय माँ-बाप रोए उनसे भी ज्यादा द्वारपाल रोते हैं। यह द्वारपाल रावण है। यदि सीता को लक्ष्मी का अवतार माने तो उस पुत्री को, वैकुंठ की देवी के रुप में द्वारपाल रावण ने दर्शन किए हैं। वह सीता बनने के बाद हर हर भटकती है तब ऐसी पीड़ा का सबसे ज्यादा अनुभव रावण ने किया है। किसी भी बहाने मैं उनका अपहरण कर वन में से अशोकवन में लाकर रखूं। तुलसी ने लिखा है -

हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ।।

सीता बंदिनी नहीं है। उसने उनके लिए एक व्यवस्था खड़ी की है। मेरी दृष्टि से रावण को समझना बहुत मुश्किल है। वह महात्मा है।

एक प्रश्न है, 'शिष्य गुरु से लंबे समय से जुड़ा हो, दीर्घकाल से परिचय हो, गुरु से अनुकूल होकर वह आश्रित व्यवहार रखता हो; संबंध बहुत मजबूत हो ऐसी अवस्था में आने के बाद उसे ज्ञानमार्ग कहे या भक्तिमार्ग?' 'विनयपत्रिका' में लिखा है, 'तोहे मोहे नाते अनेक मानीअे जो भावे।' और आप जो संबंध कहे; हरि, तेरा और मेरा अनेक संबंध है। अपनी रुचि अनुसार संबंध तय कीजिए।

एक भाई ने लिखा है, 'राम का कोई मित्र था? 'मानस' में मैत्री के बारे में कुछ लिखा गया है?' 'रामायण' में स्पष्ट लिखा है, राम के तीन मित्र थे। एक निषादपति गुह; जिसे कोई मित्र न बनाए उसे भगवान राम मित्र बनाते हैं। 'सखा मुनि बरबस भेटा।' राम के मित्र गुह, एक पतीत, दलित उस उपेक्षित को राम ने मित्र बनाया -

सखा सोच त्यागहु बल मोरें।
सब बिधि घटब काज मैं तोरे।।

राम का दूसरा मित्र सुग्रीव है। राम ने समाज के उपेक्षितों को मित्र बनाए हैं। या त्यक्त थे या पीड़ित या अन्याय के शिकार थे, ऐसे तत्त्वों के साथ राम ने मैत्री की है। परमात्मा तो सबके सखा है। उपनिषद् में वृक्ष की डाली पर बैठे जीव-शिव को सखा मानकर हमें उपनिषदकारों ने बहुत बड़ा तत्त्वबोध दिया है। यह सख्य है। राम के तीसरे मित्र विभीषण है। ये भी राम के मित्र है। मित्र की बात कहूं तो दशरथजी के मित्र जटायु है। आप पात्र वरणी देखिए! 'रामायण' को कितने वर्ष हुए, यह इतिहासविदों पर छोड़ दें। यह अपना क्षेत्र नहीं है। परंतु आप ग्यारह हजार वर्ष गिने तो अपने यहां जो सम्राट थे, वे बिलकुल जो निकृष्ट गिने जाते थे उनसे मैत्री करते थे। छोटे-से आदमी को लेकर एक शे'र है -

जिस बुलंदी से इन्सान छोटा लगे।
उस बुलंदी पे जाना नहीं चाहिए।

हम उस ऊंचाई पर न जाये जहां से कोई छोटा दिखे।

त्रिवेदीसाहब ऐसा कहते हैं कि परमात्मा पूरा कर दे तो जिसका कोई न हो उसका इलाज तो मुफ्त में करेंगे, परंतु जो सक्षम है उनका इलाज भी छोटी-सी रकम में करेंगे। ऐसा उनका संकल्प है। साहब मेरे पुराने विधानों को प्रोत्साहित कर रहे हैं। आपके साथ आत्मीय संबंध बुद्ध हो रहा है। मैंने पहले भी कहा है; परमात्मा की कृपा से मेरी कोई सुने तो इस देश में रोग का निदान कर औषधियां नि:शुल्क मिलनी चाहिए। विद्या अमूल्य है तो नि:शुल्क मिलनी चाहिए। दूसरा, रोटी। पात्र-अपात्र मत देखिए। वह भूखा है यही उसकी पात्रता है। ठंडी में कोई ठिठुरता है, उसके बच्चे भी कांपते हैं, वहीं उसकी पात्रता है। औषधि के अभाव में बीमार मरण शरण हो रहा है यही इसकी पात्रता है। ठीक वक्त पर मिल जाना चाहिए और वह भी नि:शुल्क। मैं यह बरसों से कह रहा हूं। पुनित महाराज कहते थे -

द्यो भूख्याने भाखरी अने प्रभुने देजो मन.

कबीर अपना विचार रखते हैं -

कबीर कहे कमाल को दो बातां सिख ले।
कर साहब की बंदगी, भुखे को कुछ दे।

मेरी व्यासपीठ भी कहती रही, भजन स्वयं कीजिए, भोजन दूसरों को करवाइए। इस समाज को कायर मत बनाइए। प्रसाद का मूल्य है। पर मंदिरों में प्रसाद बिकता है तब मंदिर की पताका लज्जित होती है! वहां खाना बिकता है! करसनदासबापा को याद कीजिए -

ते दिन आंसुभीनां रे हरिनां लोचनियां में दीठां.

प्रसाद की बिक्री नहीं, बितरण होना चाहिए। मुझे किसीने कहा, बापू, टोकन रखना चाहिए! कथा प्रसाद के टोकन होने चाहिए? क्या हरि ने टोकन लेकर आपको जन्म दिया है? उसने टोकन नहीं लिया है। मेरे और आपके कर्म नहीं देखे हैं। 'रामायण' में लिखा है -

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही।।

तुलसीजी लिखते हैं, परमात्मा करुणा कर मुझे देह देते हैं क्योंकि हमें अहेतु स्नेह करते हैं। मन से पूछिए, क्या हमारे कर्मों के कारण ईश्वर हमें मनुष्य बनाता है! कभी तो भीतर से ना आती है! तो यह मनुष्यदेह कैसे मिला?

बड़ें भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।
पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।

तो वहां, पात्र-कुपात्र नहीं देखा जाता। विद्याक्षेत्र आज व्यावसायिक रूप धारण कर चुका है। एक बहुत अच्छा प्रयास होने जा रहा है। मैंने पहलकर कथा दी है। रतिलाल बोरीसागर बापा; उनके शिष्यों ने एक शिक्षक को आदर देने हेतु उनके नाम का एक ट्रस्ट बनाया। परंतु उन्होंने अपना नाम न रखने की अपील की। फिर नाम हुआ, 'विद्यागुरु फाउन्डेशन।' उन्होंने मेरे पास संकल्प रखा है कि हम जो अस्पताल बनायेंगे उस में दर्दी के दस लाख रूपये खर्च तक का एक पैसा भी हम नहीं लेंगे। आप जो कहते हैं वह हमें करना है। मेडिकल कोलेज करनी है। अभी ५०-६० लाख रूपये के डोनेशन दिए जाते हैं! पर हम एडमिशन का एक पैसा तक नहीं लेंगे।

साहब, इस देश की प्रज्ञा तो सोचिए! साहब, इस देश का उपनिषदकार अन्न को अन्न नहीं कहता। रोटी नहीं परोसता। 'अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्।' यह सूत्र हमारा है। सौराष्ट्र में कहा गया है, 'ज्यां टुकडो त्यां हरि ढूकडो।' पर मुझे ऐसा लगता है, 'जेने हरि ढूकडो, ए ज टुकडो आपी शके।' लोग खिलाते हैं पर उनके जो होते हैं उन्हें ही खिलाते हैं! देखते हैं कि तिलक किया है? क्या भोजन के लिए तिलक देखा जाय? ईश्वर रोटी में तिलक देखता है? अध्यात्म जगत तो इस छाप तिलक को मिटाने की क्रांतिकारी पुकार देता है।

मेकरण दादा की सेवा अद्वितीय है। रण में पानी न हो वहां यह फकीर निकले और कुत्ता देख आये कि भूखा कहां पर है? कुत्ते के साथ लालिया गधा आए रोटियां उस पर लादकर आगे कुत्ता रास्ता बताए और रण में दूर-दूर तक पानी और रोटी पहुंचाए। साहब, अकेला आदमी! साहब, सेवा कुछ अलग ही चीज है। जिसका स्वभाव ऐसा हो वही सेवा कर सके। सेवा लादी नहीं जाती।

पांडुरंग दादा की स्वाध्याय प्रवृत्ति कितनी बड़ी! उनकी शिबिर राजुला में होती थी। मैं भी जाता था। मैं स्वाध्यायी नहीं। मैं कहीं बंधता नहीं। मेरा ग्रूप 'ओ' है। सब जगह चलता है। 'ओ' या तो शून्य है या तो पूर्ण है। शून्य माने या तो खाली है या पूर्ण है। मेरे नाम पर किसीने 'सीताराम परिवार' चालु कर दिया! मेरा कोई परिवार नहीं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्।' ग्रूप कर समाज को कितना तोड़ना है? हम साथ मिलकर चले। हम साथ-साथ बोले। व्यवस्था हेतु ग्रूप बराबर है। ये ग्रूप धर्म के नाम पर कितनी ईर्ष्या खड़ी कर दे! तुलसी लिखते हैं, उपासना के लिए अपनी-अपनी व्यवस्था जरूरी है। समाज विभक्त नहीं होना चाहिए। और वह भी जब धर्म के नाम पर विभक्त होने पर जोड़ना बहुत मुश्किल है। फिर तो स्पर्धा के सिवा कुछ नहीं रहता। करने जैसे कार्य को अग्रता देनी चाहिए। भोजन अमूल्य होना चाहिए। औषधियां कितनी महंगी है! इस यज्ञ में सामान्य मानव भी योगदान दे रहा है, यह बधाईपात्र है। कितने तेजस्वी छात्र अभ्यास से वंचित रह जाते हैं! शिक्षा महंगी हो गई है। सरकारी योजना आई कि बिना बोझ का शिक्षण! अच्छी योजना है। मैं तो समाज को बिना बोझ का भगवान देना चाहता हूं। भगवान महंगा नहीं पड़ना चाहिए। वह तुलसीपत्र में तुल जाय इतना सस्ता होना चाहिए। हाथ में रहे ऐसा हरि दीजिए।

मूल बात, प्रत्येक को अपने-अपने क्षेत्र में व्यवस्था करनी चाहिए। सरकार अपनी जगह पर, संस्था अपनी जगह पर। सभी विद्या मूल्यवान है। जो तेजस्वी है उसे तो आदर मिलना चाहिए कि वह विद्या से वंचित न रह जाय। 'विद्यागुरु फाउन्डेशन' का यह विचार मेरे समक्ष रखा और मैंने कथा दी। न दूं तो मेरा यह अपराध है। मैं कर रहा हूं इसका मुझे आप सबसे ज्यादा डेढ़ गुना आनंद है। पैसा तो ठीक है; मिलेंगे। काम देखकर पैसे आयेंगे। पर यह संदेश तो दुनिया में जाना चाहिए कि अहमदाबाद में कुछ हो रहा है। अब तो पेटन्ट करवाने सब दौड़ेंगे कि त्रिवेदी साहब ने जो किया है ऐसा हम भी करें!

'विद्यागुरु फाउन्डेशन' को कथा दी है मेडिकल कोलेज करने के लिए। उसमें एक पैसा भी नहीं लेना है। विद्यार्थी का रहना, खाना, पढ़ना, इलाज, औषधि सभी फ्री; पूरी तरह से तंदुरस्त कर वापिस भेजना। यही आवश्यक है। इतना बड़ा देश और समाज सभी वस्तु में विक्रय करना सिख गया! इलाज महंगा होता जा रहा है। साहब, आनंद कीजिए। हमारा दान अलगारी कहता है, मौज में रहिए। यह कवि को खबर है। कवि सर्जक है।, वह चतुर्मुखी है। उसे पता है समाज को सिर्फ 'इट, ड्रिन्क एन्ड बी हेप्पी' इतना संदेश नहीं देना है। इसीलिए इसके बाद तत्त्वज्ञान का घूंट पिलाया कि मौज करो, मौज करो। पर -

मोजमां रे'वुं, मोजमां रे'वुं, मोजमां रे'वुं रे,
अगम अगोचर अलखधणीनी खोजमां रे'वुं रे ...

विद्या-भोजन बिना मूल्य मिले। औषधि भी बिना मूल्य मिले। मैं समझता हूं, प्रेक्टिकल रहना चाहिए। पर गरीब वंचित रह जाते हैं। यह पूरे समाज का कर्तव्य है। यहां रिवरफ्रन्ट में प्रेमयज्ञ शुरू हुआ है।

मैं कहता था कि दशरथजी के मित्र जटायु है। दशरथजी के मित्र इन्द्र भी है। कल्पना कीजिए यह ऐसा मित्र है कि जैसे एसा मित्र अपने घर आए तो हम अपने पास बिठाए। वैसे दशरथ को दूसरे सिंहासन पर बिठा न सके। ऐसी मैत्री इसीलिए, 'अरध सिंहासन आसन देही।' तुलसी लिखते हैं, इन्द्र जरा खिसे और तो अर्ध पर दशरथ बैठे। ऐसा एक मित्र स्वर्गपति इन्द्र और दूसरा एक अधम है। एक उपेक्षित गीध। जटायु भी दशरथ का मित्र है। 'मानस' का यह सेतु तो देखिए! जटायु ने शहादत ली तब रामजी ने उन्हें 'पिता' कहा है, 'आप मेरे पिता है। मेरा दुर्भाग्य था कि मैं अपने पिता का अग्निसंस्कार न कर सका। पर मेरे सद्भाग्य है कि मेरे पिता के मित्र है आप, तो मैं पिता मानकर अग्निसंस्कार करता हूं।' प्रभु ने जटायु का अग्निसंस्कार किया।

'रामायण' में मैत्री की काफ़ी बाते हैं। सखा गुहराज, सुग्रीव और विभीषण। ये इनके तीन सखा है। युवक ने लिखा है, राम के कोई मित्र थे? 'रामायण' में मैत्री के बारे में लिखा है। पूरा मित्राष्टक लिखा है। 'किष्किन्धाकांड' में मित्र विषयक पंक्तियां है मित्रधर्म की। मुझे पोर्टुगल में 'मानस-मित्राष्टक' कहने का अवसर मिला है। संत का लक्षण मैत्री भी 'रामचरित मानस' में लिखा है। साधु में मैत्रीभाव होता है। वह आपका हाथ पकड़कर आपके साथ चले, वही संत का लक्षण है।

तो बाप, अपनी मूल चर्चा 'मानस-धर्म', हृदयधर्म है। मानवी के प्रत्येक अंग का विशिष्ट धर्म होता है। कर्ण का धर्म श्रवण है। नाक का धर्म गन्ध लेना है। जीभ के दो धर्म है, बोलना और रसग्रहण करना। त्वचा का धर्म स्पर्श का है। हाथ का धर्म कर्म का है। पैर का धर्म गति का है। प्रत्येक अंग का अपना धर्म है। हृदय हो तो ही ये सभी धर्म सलामत है। हार्टफेइल हो जाय तो आंख-कान सभी का धर्म ठप्प हो जाय। हृदयधर्म मुख्य है। हृदय धड़कता हो तो अंगो के धर्म काम कर सकते हैं। शायद कृष्ण इसीलिए कहते हैं कि बाकी सारे धर्म छोड़ देने पड़े तो छोड़ दे। अर्जुन पूछते हैं, तो फिर मुझे कौन-सा धर्म रखना? तो कहे, हृदय का धर्म रखना। यह मैं नहीं कहता, यह 'गीता' में लिखा है -

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

इस संदर्भ में देखिए। मेरी जिम्मेदारी से व्यासपीठ बात करती है कि तेरे अंग के तेरे सारे धर्म को तू छोड़ दे, तू मेरी शरण में आ जा। अंग के अन्यधर्म छूट जाय पर हृदयधर्म नहीं छूटना चाहिए। कृष्ण ने ऐसा नहीं कहा कि तू हृदयधर्म की शरण में आ जा। पर 'मामेकं शरणं व्रज।' तू मेरी एक की शरण में आ जा। शायद

अर्जुन ने पूछा होगा, कहां पर आना है? आप कहां हैं? फिर कहा, 'इश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति।' मैं हृदयस्थित हूं। तू सारे अंग के धर्म छोड़ दे। हृदयधर्म पकड़ रखेगा तो ही जीवन जीवंत रहेगा। नहीं तो जीवन निष्प्राण है। हृदय का धर्म हमें जीवित रखता है। बाराबंकवी साहब का शे'र है -

चरागों के बदले मकां जल रहा है।
नया है जमाना नयी रोशनी है।

अन्य अंगों के धर्म छूट जाय अर्जुन, तो चिन्ता नहीं बाप! तेरे हृदय का धर्म मत छोड़ना। तू धर्म की शरण में आजा। 'मामेकं', केवलं और केवल मेरी शरण में आ जा। कृष्ण कहते हैं 'मैं' माने हृदय। 'गीता मे हृदयं पार्थ', मेरा हृदय 'गीता' है। ऐसा कृष्ण ने कहा है। अतः 'मानस-धरम' हम हृदय के धरम के रूप में लेते हैं।

दधीचि अर्थवेदीय ऋषि है। उनका प्रधान वेद अथर्ववेद है। यह वैदिक ऋषि है। दधीचि का शरीर बहुत सुंदर है। उनकी हड्डियां मजबूत है। जिनमें से इन्द्र का वज्र बनाने की बात है। शुकदेवजी ने उनकी सुदृढता के तीन कारण दिए। एक उपासना; दूसरा तपस्या पर सम्यक् तपस्या। उपासना का अर्थ है किसी एक तत्त्व के निकट बैठना। उप माने निकट उनके पास आसन जमाना; जिनके पास अच्छे विचार हो उनके पास बैठना। कोई ऐसा सार्वभौम शास्त्र हो कि जो हमें विभक्त न करे, संयुक्त रखे। कोई बुद्धपुरुष जो सभी द्वन्द्व से मुक्त होकर हमें अपनी जगह से ऊपर ले जाने के लिए हमारे जैसा बनकर साथ में कार्य करे। या तो किसी साधना की विशिष्ट पद्धति लीजिए। उपासना से मनोबल मजबूत होता है। मनोविज्ञान स्वीकार करता है, मनुष्य का मनोबल मजबूत हो तो उसका शरीर अच्छा रहता है। हम पर मन का प्रभाव गहरा पड़ता है। दधीचि किसी ऐसी उपासना में रत है जिससे उनका शरीर सुदृढ है।

दूसरा, तप; कैसा तप करते थे यह पता नहीं। मैं यह समझता हूं कि तप माने सम्यक् तप। अत्यंत तप करने से शरीर शुद्ध तो नहीं रहता। शरीर क्षय तो होगा ही। हड्डियां दुर्बल होगी। मेरी दृष्टि से यह ऋषि सम्यक् तपस्वी होने चाहिए। मेरा तो अनुभव है जो अत्यंत तप करते हैं, भूखे रहते हैं, वे हंस नहीं पाते! उनका हंसना गया! ऐसी सम्यक् तपस्या करनी है। प्रसन्नता बनी रहे। मानसिक तप वह है कि निंदा स्तुति दोनों सुनने के बाद जो अपने मन को संतुलित रखते होंगे। उनका शरीर सुदृढ रहता होगा। निंदा और स्तुति के बीच संतुलन बनाए रखिए। तीसरा, जिनके पास विद्या है।

दैवी समाज बारबार वृत्रासुर से पराजित होता है। वृत्रासुर वैष्णव है, भक्त है, धर्मात्मा है। देवता बारबार पराजित होते हैं। देवता छलकपट करते हैं। वृत्रासुर को समझ नहीं पाते हैं। देवता भगवान की स्तुति करते हैं। परमात्मा प्रसन्न होते हैं। मानो कि वृत्रासुर मेरा भक्त है। देवताओं की पुकार सुनने के बाद प्रभु उन्हें दधीचि ऋषि के पास भेजते हैं। आप उनका सुदृढ शरीर मांगिए। उनके अस्थि विश्वकर्मा को सौंपकर वज्र का निर्माण कीजिए। दधीचि के पास देवगण आते हैं। 'मानस' में इन्द्र की आलोचना करते हुए सरस्वती ने पंक्ति लिखी है -

उँच निवासु नीचि करतूती।
देखि न सकहिं पराइ बिभूती।।

देवराज और देवताओं का निवास तो बहुत ऊंचा है। पर करतूत बड़ी नीच है। ऋषिश्रेष्ठ दधीचि की स्तुति करते हैं। दधीचि कहते हैं, मेरा शरीर आपको संकटमुक्त करता है तो में दान करने के लिए तैयार हूं। 'श्रीमद् भागवत' का जो भाव है वह यह है कि उन्होंने अपने प्राण का ऐसा उर्ध्वगमन किया है कि प्राण प्रभु में लीन हो रहा है। उन्हें पता ही नहीं कि शरीर छूट रहा है। अस्थि तो बाद में लिए गए। अस्थि और शरीर दोनों दे दिए। शिबि ने पूरा शरीर दिया। रतिदेव ने पूरा शरीर दे दिया। रतिदेव ने समग्र जीवन दे दिया। जगत सुखी होना चाहिए। हरिश्चंद्र सपरिवार बिक गया। एक-एक अंग की बात नहीं, पूरा शरीर दिया जाता है। जिसे आज की भाषा में देहदान कहते हैं। देवता उपासना, तपस्या, विद्या द्वारा सुदृढ हुए। उनके अस्थि विश्वकर्मा को देते हैं। उसमें से शस्त्र बना। जिससे शस्त्र बना और उसीसे वृत्रासुर का वध हुआ। वृत्रासुर को शस्त्र का पता चलते ही उसने जाना कि अब जीवित रहना संभव नहीं है। अपनी मृत्यु को मांग लेता है। एक समय आता है कि वृत्रासुर निर्वाण पाने का है तब परमात्मा की स्तुति करता है। मुझे सार्वभौम सृष्टि का राज्य नहीं चाहिए। स्वर्ग नहीं चाहिए। योग सिद्धि नहीं चाहिए। मोक्ष नहीं चाहिए। तो तुझे क्या चाहिए? 'अजात पक्षा एव मातरं खगा।' जिस पक्षी के पंख अभी खुले नहीं हो वह अपना लाल मुंह इधर-उधर करता हो उसकी माँ चारा चुनने गई हो तब वह उसकी प्रतीक्षा करता है, हे हरि, मैं भी उसी तरह तेरी राह देखता हूं। पति परदेस से आता हो और प्रियतमा उसकी राह देखती हो। क्या दृष्टांत दिया है! बिलकुल मानवीय। मुझे आपकी ऐसी प्रतीक्षा हो। यह मृत्युपूर्व का स्मरण है। 'हे गोविंद, मुझे संसार के उत्तम लोगों की मैत्री प्राप्त हो। किसी भी क्षेत्र के उत्तम मानव का सख्य अगले जन्म में प्रदान कीजियेगा।' इसमें मोक्ष या भव तैरने की बात नहीं है। अद्‌भुत स्तुति है! ईश्वर की अनुकंपा के प्रतीक्षा भी नहीं और परीक्षा भी नहीं; इसकी समीक्षा कीजिए कि किस रूप में हो रही है। मुझे उत्तम लोगों की मैत्री प्राप्त हो। नवधा भक्ति का एक प्रकार सख्य है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम् ।।

अथर्ववेदी ब्राह्मण देवता दधीचि की हड्डियां से वृत्रासुर जैसे वैष्णवने सामने से मृत्यु मांग ली है। मृत्यु पूर्व हरिस्मरण कर अगले जन्म में मुझे उत्तम मनुष्यों का संग मिले, ऐसा मनोभाव व्यक्त करता है। 'हे हरि, अगले जनम का पता नहीं, पर जो दिया है उसमें मुझे उत्तम मनुष्यों का संग प्राप्त हो।' भजन है -

साधु रे पुरुषनो संग,
भाग्ये रे मळ्यो मने साधु रे पुरुषनो संग;
हे साहेली अमने,
भाग्ये रे मळ्यो, साधु पुरुषनो संग.

भजन स्वयं कीजिए, भोजन दूसरों को कराइए। इस समाज को कायर करने की बात नहीं है। प्रसाद का मूल्य है। पर मंदिरों में प्रसाद की बिक्री होती है तब मंदिर की पताका लज्जित होती है, प्रसाद बांटना चाहिए, बिकना नहीं चाहिए। सौराष्ट्र में तो कहा जाता है, 'ज्यां टुकडो त्यां हरि टूकडो', पर मुझे तो ऐसा लगता है, 'जैने हरि टूकडो, वही टुकडा दे सके।' लोग अपनेवालों को ही खिलाते हैं! देखते हैं कि तिलक किया है? रोटी में क्या तिलक देखे? ईश्वर ने रोटी में तिलक देखा है? अध्यात्मजगत की तो यह छाप-तिलक मिटा डालने की क्रांतिकारी पुकार है।

इक्कीसवीं सदी को हृदयधर्म की जरूरत है

बाप, आज की कथा के आरंभ में सर्वप्रथम महात्मा गांधीबापू, जिनका आज निर्वाणदिन जिसे हम 'शहीद-दिन' के रूप में श्रद्धांजलि हेतु मना रहे हैं। सत्य, अहिंसा से परिपूर्ण वैश्विक चेतना को साबरमती तट पर मेरी व्यासपीठ की श्रद्धांजलि और प्रणाम। अपनी कक्षा अनुसार हम उनके बारे में कहते हैं। एक बात कहूं। सरहद के गांधी अब्दुल गफारखान साहब और गांधीबापू दोनों की संयुक्त सभा थी। मुस्लिम बहनें श्रोता थी। वे सभी परदानशीन थी। उनकी धार्मिक परंपरा अनुसार बुर्के डाल रखे थे। परिचय दिया गया। अब्दुल गफारसाहब बोले। फिर गांधीजी ने बोलना शुरू किया कि सभी बहनों ने अपने पर्दे हटा दिए! क्षणभर सन्नाटा छा गया! यह क्या? अब्दुल गफारखां साहब को तो यह पसंद आया पर आयोजकों को पसंद नहीं आया होगा! बीच में बात छोड़ गई कि यह क्या? क्यों बहनों ने पर्दे हटा दिए? होल में एक ही स्वर गूंजता रहा, आज भी प्रतिध्वनित होता है और वह आवाज थी, 'पीरों से परदा क्या?' मेरी दृष्टि से यह एक मूल्यवान घटना थी।

एक पीर जैसा मानव, एक फकीर, ओलिया, साबरमती का संत। आदरणीय माधवभाई ने अभी चालीस वर्ष पहले का लिखा हुआ उनका एक काव्य अंजलि रूप में बताया। यह आदमी खरा निकला, साहब! मैं गांधी को महादेव का त्रिपुंड मानता हूं। उनके भाल का त्रिपुंड! शंकर शोभा देता है, ऐसे किसी सत्य के उपासक से शोभा देता है। यह

त्रिपुंड आडपुंड है। इसमें तीन रेखाएं हैं। एक विचार के सत्य की रेखा है, मध्य में उच्चार का सत्य है और बिलकुल नीचे की रेखा आचार का सत्य है। कई बार अपने पास विचार का सत्य होता है पर मजबूरीवश हम उसका उच्चारण नहीं कर सकते। ऐसा सोचते है कि सामनेवाले को दु:ख होगा कि यह सत्य कुछ ओर परिणाम लायेगा? कई बार विचार के सत्य का उच्चारण नहीं होता। कई बार उच्चारित सत्य को आचरण में नहीं रख पाते।

गांधी में तीनों सत्य का विश्व के शिव के भाल का तिलक होने का सामर्थ्य है। इस मानव के पास विचार, उच्चार और आचार का सत्य है। इसीसे उस युग के विश्व के समर्थ मनुष्यों के विधविध क्षेत्र के लोगों का वंदनीय बापू के साथ विचारभेद होने पर भी यह मानव स्वीकृत होता था। तुलसी 'मानस' की चौपाई में लिखते हैं, जिस व्यक्ति का स्वभाव शत्रु को भी अनुकूल पड़ता है वह व्यक्ति अपनी माता से कैसे प्रतिकूल हो सकता है? राम का स्वभाव शत्रु भी पसंद करे। वह कैकेयी से विपरीत कैसे हो सकता है? असंभव है। एक चौपाई है -

जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला।
सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला।।

अत: 'रामचरित मानस' में राम के प्रभाव की अपेक्षा राम के स्वभाव का वर्णन अधिक किया है। प्रभाव कठिन है। पर सवाल स्वभाव का है। 'मानस' में राम के लिए ऐसा कहा गया, ऐसा स्वभाव मैंने कहीं नहीं सुना। मैं रघुपति समान किसे मानूं? किसे जानूं? ऐसा एक वक्तव्य दिया है। विश्ववंद्य गांधीबापू का स्वभाव यदि समझ में आ जाय तो उनके बारे में कई गलतफहमियां दूर हो सकती है। कवि काग का एक दोहा है -

मीठपवाळां मानवी, जग छोडीने जाशे;
ते दि' कागा एनी काण, घर घर मंडाशे.

गांधी का कितना सुंदर स्वभाव होगा! स्वभाव से स्वीकार्य लगे। महापुरुष होने पर भी कितना विनोद प्रिय होगा इसकी कल्पना तो कीजिए। बड़े आदमी विनोदप्रिय होते हैं। युवाओं को कहना चाहता हूं, प्रमादी नहीं, विनोदी रहिए। गांधीजी की कठोर बातें मेरी समझ से भी परे हैं। साहब, विश्व में व्यवस्था के लिए आई हुई महान विभूति हंमेशा अति विचित्र होती है। इसीलिए शायद समर्थ बुद्धपुरुष समझ से परे होते हैं, अति विचित्र होते हैं। समर्थ वैश्विक महापुरुष 'अति विचित्र' होते हैं। 'अति विचित्र' खराब शब्द नहीं है। यह अत्यंत महिमाशाली व्यक्तित्व के लिए प्रयुक्त शब्द है। मेरी दृष्टि से गांधी अतिविचित्र है। समझ में न आए ऐसी विश्वविभूति गांधीबापू की चेतना को शब्दांजलि समर्पित करता हूं।

दे दी हमें आज़ादी बिना खडग बिना ढाल।
साबरमती के संत तुने कर दिया कमाल।

मेरी इच्छा थी कि राजघाट पर गांधीबापू को लेकर कथा करूं। स्वीकृति भी मिल गई। उनके परिसर के नियमों का पालन होना चाहिए। अपने यहां भगवान की काफ़ी कृपा हुई कि आदरणीय नारायणबापा देसाई ने गांधीकथा स्थापित की। एक अधिकारी वक्ता ने यह महान कार्य किया। अब तो वल्लभभाई पटेल कथा भी शुरू हुई है। मेघाणी पर भी त्रिदिवसीय कथा होती है। अच्छा है। कथा एक अच्छा माध्यम है। उनसे लोगों के निकट पहुंचा जाता है। लोगों के पास समय का अभाव है अत: पढ़ना कम हो गया है। कथा के माध्यम से लोगों तक पहुंच पाते हैं। ऐसे प्रयोगों को मैं वंदन करता हूं। स्वागत करता हूं। दो मिनट मौन बहुत आवश्यक है।

यहां नौ दिवसीय रामकथा का केन्द्रीय संवादी विचार 'मानस-धरम' है। जिसके बारे में हम विचार करते हैं। गंगातट पर सुमंत राम को कहता है कि पिता की आज्ञा का पालन धर्म है। पर पिता ने चौदह बरस के बनवास के लिए आज्ञा दी अत: आप बन में आए। पर एक दूसरी आज्ञा भी दी है कि चार दिन बन में घूमाकर राम को लौटा लाना। यदि राम न आए तो सीता को जरूर लाना। सचिव सुमंत कहता है कि राघव, पितृआज्ञा पालनधर्म है। इसका पालन कीजिए। पर दूसरी आज्ञा का भी पालन कीजिए। तब राम ने कहा, हे मेरे पितातुल्य सुमंतजी, मेरी दृष्टि से धर्म के रहस्यों की जिन्होंने व्याख्याएं की है इसकी सूचि बनाऊं तो उसमें एक नाम आपका है। क्या आप मुझे यों कहेंगे कि मैं धर्म की अस्थायी व्याख्या कर लौट जाऊँ? फिर राम कहते हैं -

सिबि दधीच हरिचंद नरेसा।
सहे धरम हित कोटि कलेसा।।
रंतिदेव बलि भूप सुजाना।
धरमु धरेउ सहि संकट नाना।।

इन सभी ने धर्मधारण कर संकट सहन किए। क्लेश सहे। यहां धरम माने हृदय का धरम। 'मानस' माने हृदय। इसकी हम बहुत ही सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा कर रहे हैं।

'मानस' में १८२ बार 'धर्म' शब्द का उल्लेख है। इसमें 'धर्म', 'धरम', 'धरमु', 'धरमा' शब्द है। कई प्रकार के धरम, निजधरम, नारीधरम, ऋषिधरम, राजधरम, नीतिधरम ऐसे कितने ही धरम के क्षेत्र 'मानस' में दिखाए गए हैं। 'धरम' काफी गुह्य तत्त्व माना गया है। पर यह 'मानस-धरम' माने हृदय का धरम। एक संवेदना का समाज में प्राकट्य होना बहुत जरूरी है। यह सेवायज्ञ कीडनी की बीमारी के इलाज के लिए हैं। इसे केन्द्र में रखकर हम चर्चा कर रहे हैं। इन पांच नामों में चार राजा शिबि, हरिश्चंद्र, रतिदेव, बलि है। दधीचि अथर्ववेदीय ऋषि है। इन पांचों ने धर्म के लिए बलिदान दिया है। हृदयधर्म के लिए बलिदान दिया है। प्राय: देहदान हुआ है।

तीसरा पात्र हरिश्चंद्र है। उनके बारे में कई गलत फहमियां है। गांधीजी को साथ जोड़े तो गांधीजी ने हरिश्चंद्र नाटक देखा। उसमें से सत्य की प्रेरणा उत्पन्न हुई। यह घटना हम जानते हैं। अपने यहां अनंत प्रसादजी नागर गृहस्थ थे। उन्होंने ने आख्यान लिखें। नलाख्यान, हरिश्चन्द्राख्यान, सुधन्वाख्यान आदि। फिर अपने यहां गलियों में प्रेमानंदी परंपरा में और दूसरी तरह से भी आख्यान मिले। मैंने बचपन में ये आख्यान सुने हैं। मैं तो रामकथा का गायक हूं। महुवा के लोगों के खास आमंत्रण पर मैं नौरात्रि में व्याख्यान देने भी जाता था। मेरा विषय व्याख्यान नहीं है। जनम-जनम का मेरा ग्रन्थ यही है और यही रहेगा। तो बाप, हरिश्चंद्र की विश्वामित्र के साथ जुड़ी कथा का आपको पता है। हरिश्चंद्र अयोध्या के राजा है। तारामती पत्नी है। रोहित नामक पुत्र है। विश्वामित्र को सवा लाख सुवर्ण महोर देने की बात है। विश्वामित्र को पूरा राज्य दे दिया। यह सत्यवादी की कसौटी थी। आप जानते हैं कि विश्वामित्र और वशिष्ठजी के बीच थोड़े मतभेद रहे। सैद्धांतिक मतभेद यह था कि वशिष्ठजी प्रारब्धवादी और विश्वामित्र पुरुषार्थवादी थे। विश्वामित्रजी मानते थे प्रारब्ध से स्वर्ग नहीं मिलता। मैं स्वयं स्वर्ग निर्माण करना चाहता हूं। विश्वामित्रजी पुरुषार्थी है। राम इन दोनों के बीच सेतु बने हैं। इन दो ऋषियों को जोड़ने का कार्य किया है।

राम के अवतार कार्य की सूचि बनाए तो उन्हों ने पुरुषार्थ और प्रारब्ध को जोड़ने का कार्य किया है। दोनों महत्त्वपूर्ण है। दोनों का सेतु बनाया। 'मानस' में ऋषि राम को धरमसेतु, सत्यसेतु कहते हैं। आप हमारे लिए सेतु बने हैं। हरिश्चंद्र सत्यवादी है। वह वशिष्ठजी की शिष्य परंपरा में आता है। विश्वामित्रजी को लगा, मैं इसकी कसौटी करूं। देखूं तो सही यह कितना बड़ा शिष्य है। कमज़ोरी कहां नहीं होती? इतने महान ऋषियों के बीच स्पर्धा हमें भी नहीं सुहाती! मेरी तलगाजरडी आंख से मूल्यांकन करूं तो वशिष्ठजी में तेजोद्वेष की मात्रा नहीं लगती। विश्वामित्र में ज्यादा है। इसमें क्षत्रियकुल भी काम कर गया है। तो उन्हें लगे कि मैं परीक्षा करूं। तुलसी के विश्वामित्र अलग है। वे संपत्ति या राज नहीं, दशरथ की संतति मांगने आते हैं।

हम सोचते हैं यह तेजोद्वेष है, जो मिटाना कठिन है। समक्षेत्र में तो ओर भी कठिन होता है। येनकेन प्रकारेण उसके पद से निकाल दे! यह वस्तु जो हमारे समाज में है; समक्षेत्र में यह बहुत होती है। यह आदि बीमारी है। कीडनी खराब हो तो त्रिवेदी साहब इलाज कर सके पर तेजोद्वेष का इलाज तो तीन वेदवाले त्रिवेदीसाहब के पास भी नहीं है! कोई चतुर्वेदी या पंचमबेदी भी नहीं छुड़ा सकते! हरि का भजन छुड़ा सके। भजन ही हमें तेजोद्वेष से मुक्त कर सकता है।

भगवान कृष्ण ने 'भगवद्कथा' में एक नया संन्यास उत्पन्न किया। अपने यहां संन्यास के कई प्रकार है। पर कृष्ण को लगा, संसार में एक नया संन्यास स्थापित करना चाहिए। ओशो ने एक नया संन्यास स्थापित किया। फिर खुद ने ही विसर्जन किया। कृष्ण का एक ही संन्यास है जो हमारे जीवन के लिए जरूरी है। मौज में रहे, प्रसन्न रहे तो यह संन्यास काम में आता है। कृष्ण ने अर्जुन से कहा है, तू सुन मत, पर जानना सिख। संभव हो तो इसे अनुभव में ले। 'ज्ञेय: स नित्य संन्यासी।'

नित्य संन्यासी नामक नया संन्यासी खड़ा किया। जो किसी का द्वेष नहीं करता। किसी से कोई आकांक्षा नहीं रखता। वह मानव चाहे देसी-विदेशी किसी भी वेशभूषा में हो उसे तू नित्य संन्यासी जानना। यह संन्यास बहुत कठिन है।

दो महापुरुषों के बीच मतभेद रहा। राघव ने दोनों के बीच सेतु बनाया। दोनों को एक किया। वशिष्ठजी की कसौटी लेने और फिर आप जानते हैं कि विश्वामित्र के पास हरिश्चंद्र ने बात की, मैं आपकी क्या सेवा करूं? पूरा राज्य दे डाला। तब कहा कि बरसों पहले सवा लाख सुवर्ण मुद्राएं देने की बात थी उसका क्या? तुमने राज्य दिया वह मेरा हो गया। तुम्हें मेरी सवा लाख सुवर्ण मुद्रा देनी पड़ेगी। फिर ये तीनों ऋषि ने की हुई बात को, सत्य को सिद्ध करने काशी की ओर चल पड़ते हैं, बिक्री हेतु। ईक्कीसवीं सदी में मेरे दिमाग में यह बात उतरती नहीं है। इसके भजन लिखे गए जिसमें लिखा है, हे भगवान, कलियुग में ऐसी कसौटी मत कीजियेगा। चेलैया को कूटने की बात आती है। क्या अपने उपनिषद का ईश्वर इतना क्रूर हो सकता है? कुछेक धर्मों में ईश्वर की कल्पना बड़ी कातिल है, क्रूर है! अपना ईश्वर कृपालु है। 'मानस' कहता है -

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्‌भुत रूप बिचारी।।

परमात्मा परम कृपालु हो। ये तीनों राज्य छोड़ते हैं। प्रजाजन आक्रंद करते हैं।

जोगी, मत जा, मत जा जोगी ...

'महाभारत' में कर्ण गिरा और प्राण जाने की तैयारी है। पूछा गया, कोई जिजीविषा है? जवाब मिला, मुझे जयमाला पहनाने अप्सराएं तैयार हो रही है। धन्य है सूर्यपुत्र। अत: कृष्ण कहते हैं, है अर्जुन, मेरी दृष्टि से ब्रह्मदेवता को आदर देनेवाला इस धरती पर कर्ण के सिवा कोई दूसरा नहीं है। कृष्ण युद्ध रोकने में असफल रहे। ये यद्यपि चाहते थे युद्ध न हो। इसलिए वे दूत बने हैं। पूरी दुनिया में समाचार फैल गए कि कृष्ण दुर्योधन की सभा में दूतकर्म के लिए संधि का प्रस्ताव लेकर जा रहे हैं। वहां कृष्ण का समयोचित प्रवचन होनेवाला है। तब अस्सी हजार वर्षों से तपस्या करनेवाले हिमालय के योगी पवन पादुका से पहुंचे कि देवकीनंदन क्या बोलेंगे? उनके वचन कैसे होंगे? कृष्ण के बोल, उनका त्रिभुवन विमोहित स्मित हमें जकड़ लेता है। दुर्योधन ने भी सन्मान करने में कोई कमी नहीं रखी थी। सभी चाहते थे कि कृष्ण हमारे सारथि बने। कर्ण को 'सारथि पुत्र, सारथि पुत्र' कहकर निरंतर तेजोवध किया गया है! कर्ण जहां जाता है, इसी मुद्दे पर वह अपमानित होता है और कृष्ण को सारथि होने का गौरव प्राप्त होता है।

सबको अपने-अपने तरीके से मूल्यांकन करने का अधिकार है। अस्वीकार करना यह भी अधिकार है। कल प्रोफेसर पूजारा साहब मिले थे; नखशिख प्रोफेसर। विवेक, विचार से मुक्त। 'बापू, मेरे पिताजी 'रामचरित मानस' का पाठ करे। मैं 'रामायण' के प्रसंग अपने विद्यार्थीयों को कहूं।' फिर गुरु की व्याख्या की 'गुरु'GURU; 'G' माने जो गाईड कर सके। 'U' माने अन्डरस्टेन्डींग-समझदारी। 'R' माने रिन्यु; प्रति दिन तरोताजा-नयानया। जिसस क्राईस्ट कहते थे, रोज नये कपड़े पहने। जिसस तो एकदम गरीब थे। आपके पास विचार का वस्त्र नया होना चाहिए। मैं कथापोथी का कपड़ा रोज बदलूं इसका अर्थ है कि कथा रोज नई होनी चाहिए। 'प्रतिक्षण वर्धमानम्।' नारद ने भक्तिसूत्र में यह कहा है। विश्ववंद्य गांधीबापू कहते थे कि आज जो विचार मैं कहूं, शायद कल वह पुराना हो जाय! कल मुझे दूसरा सत्य प्राप्त हो तो फिर आप जो बाद में बोले उसे ही सच मानियेगा। विनोबाजी तो कहते थे मैं, भरोसेमंद आदमी नहीं हूं! मेरे विचार हररोज नए होते हैं, तरोताजा होते हैं। आदमी नया होना चाहिए। अंत में 'U' माने जो हमें ऊपर उठाए, उर्ध्वगमन करवाए। गुरु की सुंदर व्याख्या की। ऐसे शिक्षकों को देखकर मैं प्रसन्न होता हूं।

तो बाप, आदमी हररोज नया चाहिए। कथा तो राम की ही रहेगी। कथा प्रेम की हो या करुणा की। सत्य रोज नया चाहिए। प्रेम तरोताजा होना चाहिए। करुणा भी नूतन होनी चाहिए। अत: ये तीन सूत्र है।

कृष्ण अद्‌भुत बोलते हैं। 'दुर्योधन तुम्हारे यहां भोजन नहीं करूंगा। भोजन के भी कुछ कारण होते हैं। भूख हो, आदर मिले और तुझे मेरे प्रति आदर नहीं है। मुझ पर ऐसा कोई संकट नहीं है कि मुझे कहीं अनचाहा खाना पड़े। मैं विदुर चाचा के यहां भोजन करूंगा।' अपने यहां संध्या के समय भजन गाए जाते थे। 'हालोने विदुर घेर जईए ओधवजी।' इस कथा से हम परिचित है। राज्य का अतिथि, दूतकर्मी कृष्ण विदुर के यहां भोजन लेते हैं। संधि निष्फल जाती है तो नियति क्या करना चाहती है इस पर सोचते हैं। राजदूत को राज्य की सीमा तक सादर पहुंचाने का काम करना है; किसे भेजे? तब कृष्ण ने ही कहा, कर्ण को भेजिए। कृष्ण अपने रथ में कर्ण को बिठाते हैं। बातें करते-करते सरहद तक पहुंचते है। कृष्ण रथ में से उतर कर कहते हैं, कर्ण, तू राधेय नहीं, कौन्तेय है। राजनीति आई। पर उसमें भी विश्वमंगल हुआ। तेरी मनीषा द्रौपदी को पाने की थी। तू ज्येष्ठ पांडव होने के नाते उसे प्राप्त कर सकेगा। तू राज्य का अधिकारी बनेगा। प्रलोभन कितना बड़ा! कृष्ण की बात को खत्म करता, कर्ण हास्य करता है, आप किसे खिलौने बताते हैं? मैं कबूल करता हूं गोविंद कि कभी सूरज बादलों की ओट में चला जाता हूं पर इससे सूरज, सूरज मिटता नहीं है। कर्ण सूर्यपुत्र होने के नाते प्रतापशाली है। 'महाभारत' में दो जनों के लिए सूर्यास्त हुआ था। भीष्म और कर्ण ने मृत्युवरण की तब दो सूरज अस्त हुए थे।

मेरा कहना है कि दुनिया ने 'सुतपुत्र' कहकर तेजोवध किया है। कर्ण को समझाने में कृष्ण निष्फल गए। सूर्यकुल की मर्यादा में रहकर प्रणाम किए हैं। फिर कुंता कर्ण से मिलने जाती है। कर्ण पानी में कटि तक डूबा स्नान कर रहा है। कुंता को लगा, इन्हें सूर्यपूजा करने दूं। कुंता को धूप लगती है। लोकलज्जा के कारण पुत्र को त्याग देने के पश्चाताप की धूप; तीसरा भयानक युद्ध सामने दिखाई देता है। चौथा, कर्ण की तेजस्विता! धूप तीखी हो तो थोड़ा परदा करते हैं। कुंता डाली पर रखे कर्ण के उपवस्त्र की आड में ठण्डक का अनुभव करती है। सूर्यवंदना पूरी हुई। कर्ण ने कुंती को देखा। उस समय कर्ण के हृदय को समझना कठिन है। 'मैं राधेय, सूतपुत्र आपका अभिवादन करता हूं। इस समय आपका आगमन! मुझे लगता है आप किसी कार्यवश मेरे पास

तेजोद्वेष निकल जाना कठिन है। समक्षेत्र में ऐसा सोचा जाता है कि उसे कैसे पछाड़े? येनकेन प्रकारेण उसे कैसे पदच्युत करे? समक्षेत्र में, अपने समाज में यह बहुत चलता है। यह बीमारी बहुत ही पुरानी है। कीडनी बिगड़े तो त्रिवेदी साहब इलाज कर दे, पर तेजोद्वेष में तो तीन वेद वाले त्रिवेदी साहब भी कुछ न कर पाए! कोई चतुर्वेदी-पंचमवेदी भी न छुड़ा सके। उसे या तो हरि का भजन छुड़ा सके। एक ऐसी स्थिति का नाम भजन है। वही हमें तेजोद्वेष से मुक्त रख सकता है।

आई है। मुझे योगेश्वरने कहा है। बताइए क्या हेतु है?' कहा, 'तू ज्येष्ठ पांडव है, उत्तराधिकारी बनेगा। पांचो अनुज तेरी वंदना करेंगे।' 'मुझे राधेय होने का गर्व है माँ। मुझे पता है। अत: मैं वचन देता हूं कि धर्म, भीम, सहदेव, नकुल को नहीं मारूंगा। पर अर्जुन को नहीं छोडूंगा। तुझे पांच रखने की ममता है न, तो पांच ही रहेंगे। अर्जुन मरेगा तो मैं रहूंगा और मैं मरूंगा तो अर्जुन रहेगा। पर मैं अपना सत्यधर्म नहीं चुकुंगा।' दोनों के संवाद में कुन्ती की अपेक्षा कर्ण महान है। कुंता 'विजयी भव' नहीं बोलती, क्योंकि वह ऐसा नहीं चाहती। अत: कहती है, तू निरोगी रहे। ऐसे आशीर्वचन देती है। यही है व्यास की लेखिनी। इसी कर्ण के लिए कृष्ण कहते है, 'अर्जुन, कर्ण जैसा किसी ब्रह्मवेत्ता का सन्मान करनेवाला दूसरा नहीं है।' यह प्रेमपत्र है, प्रमाणपत्र नहीं।

'रामायण' में लिखा है। डोक्टर का विरोध नहीं करना चाहिए। सयाने को नौ प्रकार के आदमियों का विरोध नहीं करना चाहिए।

सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी।
बैद बंदि कबि भानस गुनी।।

रावण ने जब मारीच को उत्तेजित किया तब मारीच ने सोचा, इसका विरोध करूंगा, तो यह मुझे मार डालेगा। रावण की अपेक्षा राम के हाथों मरना अच्छा। 'सस्त्री'; जिनके हाथों में शस्त्र हो तो व्यवहार कुशल आदमी को उनका विरोध नहीं करना चाहिए। यह व्यवहार है। सत्यवादी को तो शस्त्र का भी भय नहीं होता। शस्त्री से विरोध टालना चाहिए। 'मर्मी'; हमारे भीतर के भेद को जानता हो उससे विरोध नहीं करना चाहिए। नहीं तो आपके रहस्यों को खोल डालेगा। 'प्रभु'; यहां प्रभु का अर्थ स्वामी है, मालिक है, समर्थ है। इसका भी विरोध नहीं करना चाहिए। 'सठ' माने जिसमें धूर्तता भरी हो इसका विरोध मत कीजिए। नखशिख धूर्त से सावधान रहिए। काठियावाड में कहावत है कि समझदारी माने दु:ख। जितनी ज्यादा समझ उतना ज्यादा दु:ख। मूर्ख को क्या लेना-देना?

'धनी'; अधिक धन हो उससे विरोध मत कीजिए। गैरसमझदार को क्या इच्छाएं! धनिक से विरोध टालिए। येनकेन प्रकारेण आपके लिए मुसीबत आ सकती है। प्रमाणित डिस्टन्स रखना चाहिए। बैद; डोक्टर से विरोध नहीं करना चाहिए। उनकी पथ्यापथ्य की बात माननी चाहिए। कवि; कवि-सर्जक के साथ विरोध मत रखिए। वे सत्य के उपासक है, चतुर्मुखी है। इनसे विरोध मत कीजिए। 'भानस' माने रसोईया। इनसे विरोध मन कीजिए। 'गुनी'; सयाने को गुणगन से विरोध नहीं करना है। उनमें दैवी संपदा होती है। कृष्ण का कर्ण को यह प्रेमपत्र है। वे अपनी जात को खुली करते हैं। मैं असत्यवादी हूं। मैंने ही सारे खेल खेले हैं। 'तपस्वी नियत व्रत:।' अंगदेश के राजा कर्ण जैसा कोई तपस्वी नहीं है।

कृष्णशंकर दादा से सुना है कि बात सत्यात्मक होनी चाहिए। सूत्रात्मक होनी चाहिए। लम्बी नहीं होनी चाहिए। कई बार छोटी-सी बात को हम दीर्घसूत्री बना देते हैं! तीसरा, बात स्नेहात्मक होनी चाहिए। शास्त्रात्मक माने कोई आधार होना चाहिए। आखिर में, बात स्वानुभवात्मक होनी चाहिए। भीतरी थोड़ा अनुभव होना चाहिए। दादाजी ऐसी पंचसूत्री बात करते थे।

कृष्ण ने कर्ण को तपस्वी कहा है। कर्णने कौन-सा तप किया? ऐसा लगता है, कर्ण का सबसे बड़ा तप कदम उनको हर कदम अपमान सहना पड़ा है। निरंतर उनका तेजोवध हुआ है। निरंतर अपमान सहन करना सबसे बड़ा तप है। कर्ण ने लिया हुआ व्रत कभी छोड़ता नहीं। सुबह के सवा प्रहर में जो कोई आए उसे दान देना। दुश्मन को भी क्षमा देना। इसीसे मेरी दृष्टि से इस धरती पर तू धर्मात्मा है। यह कृष्ण ने कहा है।

राम प्रारब्ध और पुरुषार्थ के सेतु बने हैं

बाप, रामकथा के आठवें दिन के आरंभ में कथा में उपस्थित सभी पूज्यचरण, विध-विध विद्या के सभी आदरणीय उपासकजन, निमित्तमात्र यजमान परिवार, जोइसर परिवार, मेरे श्रोता भाईयों-बहनों, आदरणीय पद्म श्री त्रिवेदी साहब। हम सब समझ सकते हैं कि अत्यंत व्यस्त रहते भी आज की कथा में हमारे राज्य के मुख्यमंत्री आनंदीबहन का आगमन आनंदित करता है। राजपीठ व्यासपीठ के पास आई। भारत की संस्कृति का यह प्राचीन स्वभाव है। उन्होंने हमें आश्वासन भी दिया सरकार की ओर से और गुजरात की जनता की ओर से भी कि त्रिवेदी साहब का यह बहुत ही मंगलकार्य है। यह कार्य रुकेगा नहीं। उन्होंने विश्वास दिलाया है। मैं व्यासपीठ पर से आनंदीबहन के इस आश्वासन को और उनके दिल की इस भावना की कदर करता हूं। धन्यवाद व्यक्त करता हूं।

'रामायण' में राज्य का मुखिया कैसा होना चाहिए, उसकी एक परिभाषा है। गांव का, तालुका पंचायत का, जिल्ला पंचायत का हो, प्रमुख हो, मुख्यमंत्री हो, प्रधानमंत्री हो कि दुनियाका सब से बड़ा हो वह कैसा होना चाहिए य बात यहां प्रासंगिक है इक्कीसवीं सदी में। तुलसी कहते हैं, रामजी ने भरत से कहा कि भाई, अयोध्या का शासन चलाना है तो मुखिया कैसा होना चाहिए; मुख जैसा होना चाहिए। शरीर में अंग काफी है। हम मूल अंग हृदय के बारे में तो बातें करते हैं। खाने का काम तो मुंह ही करता है। अन्य अंग यह काम नहीं करते। निवाला हाथ में ले पर खाते तो मुख से ही है।

गुजरात उनके पैरों से खड़ा है। मैं पूछुं, 'कैसे है, नरेन्द्रभाई?' जवाब होता है, 'बापू, परम सुख।' 'मुखिआ मुखु सो चाहिए।' नेता मुख जैसा होना चाहिए। वस्तु मुंह में ही डालते हैं पर उसका रसतत्त्व नख से शिख तक पहुंचता है। राज्य के छोटे से छोटे आदमी तक उसका सत्त्व-तत्त्व पहुंचता है। कार्यभार तो मुख्यमंत्री और उनकी टीम देखती है पर ज्यों मुंह में रखा निवाला पूरे शरीर में जहां-जहां जरूरत पड़ी वो सारी वस्तु की पूर्ति करता है, ऐसा मुखिया चाहिए। अत: रामजी भरतजी से कहते हैं कि तू अयोध्या का शासन अच्छी तरह से चलाना जिसका फायदा सभी को मिलना चाहिए। यह कितना बड़ा राजनीति का पाठ है! मैं अपनी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं कि बहनजी स्वयं आई और त्रिवेदी साहब के कार्य की भूरि भूरि प्रशंसा की।

'मानस-धर्म' को हमने हृदयधर्म माना है। तो बाप, जहां हृदय हो वहां रोग भी होता है। किसी का हृदय सिकुड़ता है तो किसी का चौड़ा हो जाता है। नलियां मोटी हो जाती है। रक्त पहुंचता नहीं है। जिसे हृदयरोग कहते हैं। उसी तरह हृदयधर्म को भी दो रोग होते हैं, जिनके नाम 'रामायण' में है। धर्महानि पहला रोग है। दूसरा रोग 'गीता' में लिखा है, जिसका तुलसीदासजी ने अनुवाद कर धर्मग्लानि नाम दिया है। ये दो हृदयरोग है।

'रामचरित मानस' के 'उत्तरकांड' में कागभुशुंडिजी ने अद्‌भुत सात प्रश्न पूछे हैं। एक बुद्धपुरुष ने सातों प्रश्न के उत्तर दिए हैं। जिसमें 'रामायण' का निचोड़ है। सातों कांड ज्यूस के समान है। एक प्याला में डालकर पी जाए। सातवां प्रश्न मानस रोग के बारे में है। हे मेरे बुद्धपुरुष, हे मेरे सद्‌गुरु, मेरे मानसरोग के बारे में आप कुछ कहें। 'मानस' में क्या-क्या रोग है? मनोरोग, हृदयरोग; कितने प्रकार के रोग? यह तो पांच सौ वर्ष पहले के हैं। हृदयरोग, मनोरोग ऐसे नाम दिए हैं। मानसरोग का बड़ा प्रकरण है। इसके बाद इलाज की व्यवस्था बताई है। क्या इलाज है? इसके मूल में तीन वस्तु लिखी है - वात, पित्त, कफ। तीनों की हमें सम्यक् जरूरत है। तीनों की आवश्यकता है। यदि सम्यक्ता टूटे तो मुश्किल हो जाय। पित्तप्रकोप में आदमी बीमार होता है। कफ वृद्धि से फेफडे कमजोर हो जाते हैं। हमारे बोलने में खराश रहती है। वातरोग माने जोड़ों का रोग। बढ़ती उम्र का रोग है। तुलसी ने पूरा वैदक शास्त्र रखा है।

काम बात कफ लोभ अपारा।
क्रोध पित्त नित छाती जारा।।

तुलसी ने काम को अत्यंत भोग और बात का रोग कहा है। काम बात का रोग है। कफ को लोभ कहा है। यह असीम है। काम असीम नहीं है। बार-बार काम सवार हो जाता है, यह बात अलग है। वह कुछेक क्षणों का मेहमान होता है। पर लोभ तो अपार है। सप्ताह, दो सप्ताह लोभ करना ऐसा नहीं है। लोभी को ज्यादा कफ रहता है। अमुक दान और भिक्षा पात्र शोभनीय होते हैं। पर कफ निकाले तो दुर्गंध ही देता है। जिस बर्तन में निकाला हो वह भी दुर्गंध मारता है। कुछेक दान सुंदर होते हैं। ईश्वर ने मनुष्य को काफी दिया हो पर, भयानक लोभी होते है! एक लोभी के घर में आग लगी तो उसने फायर ब्रिगेड को भी मिसकोल किया! घर जलने दिया पर कोल का खर्च नहीं होना चाहिए! ऐसे लोभी अधिक कफ के शिकार होते हैं। क्रोध पित्त है जिससे छाती में जलन होती है। पित्तप्रकोप आदमी की छाती में जलन करता है। एक प्रकार की जलन शुरू हो जाती है।

'मानस-धर्म' की बात करें तो उसके भी रोग है। धर्मरूपी मनोरोग को, हृदयरोग को दो बीमारियां हैं। धर्महानि होती है, धर्मनाश नहीं होता। हार्ट का नाश होता है या दान किया जाता है। दूसरा 'गीता' का शब्द 'यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।' ग्लानि होती है। धर्म को हानि कब हो? मैं संवादरूप में दो-तीन कारण कहूंगा। जब धर्म दंभ का नकाब पहने तब धर्महानि होती है। पर धर्म का नाश नहीं होता। आपकी शुभकामना और गुरुकृपा से मैं पचपन साल से रामकथा गायन करता हूं। उसमें धर्मसाररूप में सत्य, प्रेम, करुणा है। क्या सत्य का नाश होता है? नहीं होता। वैज्ञानिक कहते हैं अरबो, खरबो बरसों के बाद यह सूरज नहीं होगा पर धर्म सनातन और शाश्वत है। सत्य यदि धर्म है तो अविनाशी है। पर सत्य का थोड़ा-सा क्षय होता है। जब हम सत्य के साथ खिलवाड करते हैं तब होता है! आप सोचियेगा, सत्य बौद्धिक नहीं होना चाहिए, सत्य हार्दिक होना चाहिए। बौद्धिक सत्य में खिलवाड़ होता है। हरिश्चंद्र का सत्य बौद्धिक नहीं, हार्दिक है। इसलिए तुलसी ने 'मानस' में पांच पुण्यश्लोक नाम लिए हैं।

यह उपदेश नहीं पर आपसे विचारविमर्श हो रहा है। जब हम दंभ करते हैं तब धर्महानि होती है। धर्म के नाम पर व्यक्ति से लेकर समग्र विश्व का पोषण होना चाहिए, उसके बदले शोषण शुरू हो जाता है! उस वक्त धर्म की पताका फ़हराती नहीं है पर फ़फ़डाती है कि हमारे नाम पर क्या-क्या होता है! एक दंभ; दूसरा शोषण और तीसरा अपने मनगढन्त बनाए नेटवर्क अनुसार हम जिस नए नए पंथ को धर्म का नाम देते हैं यह भी धर्म की हानि है। तुलसी ने लिखा है -

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ।।

सत्य, प्रेम, करुणा सनातन मूल्य है। मैं हंमेशा कहता हूं, सत्य अपने लिए होना चाहिए; प्रेम अन्य के लिए और करुणा समग्र जगत के लिए होनी चाहिए। सत्य, प्रेम, करुणा का मेरा अपना गणित है। क्या धर्म के नाम पर इस देश को तोड़ने की जरूर है? क्या सत्य, प्रेम, करुणा पर्याप्त नहीं है? पर मुझे कुछ शुरू करना है, दूसरों को भी कुछ दूसरा शुरू करना है! फिर दोनों ग्रूप स्पर्धा करते हैं! श्रद्धा वहां से बहकर वैकुंठ में चली जाती है! फिर श्रद्धा नहीं रहती है, स्पर्धा होती है। अपने यहां धर्म का सूत्र गगन सिद्धांत है। धर्म का सिद्धांत आकाश की तरह होना चाहिए। इससे ज्यादा विशालता धर्म में कौन सी होती है? मेरी व्यासपीठ का यह मनोमंथन है। मुझे आनंद है कि आप भी जुड़े हैं। मेरी व्यासपीठ अलीमौला का कीर्तन भी करती है। क्या मुझे मुश्किलें नहीं आती होगी? मेरे देश का ऋषि जो करता था मैं वह करने बैठा हूं।

व्यास का सिद्धांत है गगनसिद्धांत। अत: हम व्यास को कहते हैं 'नमोस्तुते व्यास विशाल बुद्धे।' प्रत्येक शिक्षक अपने-अपने वर्ग में अलग-अलग होते हैं।

रिसेस में सब इकठ्ठे होते हैं। जिसस, बुद्ध, महावीर इन सब महापुरुषों में से किसी ने भक्ति, ज्ञान, कर्म के क्लास लिए। पर रिसेस में सब साथ होते हैं। हम बेवजह दु:खी होते हैं! आप वेदमंत्र का क्या अर्थ करते हैं? 'संगच्छध्वं', इसका क्या अर्थ करते हैं? सब मटियामेट कर डाला! मेरा हेतु कथा का है, इस निमित्त राष्ट्र एक बना रहे। साधु की संक्षिप्त व्याख्या करें तो 'जो डरे नहीं वही साधु।' आप डर जाए अत: लोग समझे कि 'धेर इज़ समथिंग रोंग!' 'भगवद्गीता' के सोलहवें अध्याय में दैवी गुणों का जो वर्णन है, उसका पहला लक्षण है अभयम्। कल विनोदबापा कहते थे कि मैंने तो ऐसा सुना है कि आनंदीबहन कभी हंसते ही नहीं। अच्छा है आज हंसती है। अनिवार्य हंसना पड़ा! सर्जक डरता नहीं। सर्जक की एक अस्मिता है। गायक की अस्मिता होती है। उसे आप अभिमान मत माने। 'अस्मिता' शब्द पतंजलि का है। सर्जक क्यों डरे? किसी की खुशामद क्यों करें? विद्या का उपासक, कलाकार किसी की दाढी में क्यों हाथ डाले? शास्त्र की दृष्टि और कुछेक अनुभव और अंत:करण की दृष्टि से सोचे तो निर्भय और अभय में फ़र्क है। निर्भय दूसरे से आधारित है। आप के पास रिवोल्वर हो तो आप निर्भय है। आपके पास पांच साथी है तो आप निर्भय है। अभय किसी पर आधारित नहीं है। अभय अंदर से प्रस्फूटित होता है। 'रामचरित मानस' में कहा गया है -

दीन जानि तेहि अभय करीजे।

अभय के अंतर चक्षु खुल जाते हैं। 'अभयं सत्त्वसंशुद्धि:।' यह 'भगवद्गीता' ने कहा है। क्या शेर दहाडे तो अभिमान है? यह उसका गौरव है, स्वभाव है। डरे वो साधु नहीं।

रूखड बावा तुं हळवो हळवो हाल्य जो।

रूखड अंदर से रूई जैसे होते हैं। अंदर से नर्म उपर से कठोर। मेघाणी का वेलो साधु -

गरवाने माथे रूखडियो झळुंबियो।

गरवो माने गिरनार। पर गर्वीला आदमी भी होता है। उस पर कौन मंडराये? जो भीतर से गर्वीला हो, अभय हो। गर्वीले आदमी को भी आनंद है। जलारामबापा डरते होते तो क्या उनके नाम डंका बजता? कहते हैं कि वीरपुर में जब वीरबाई का दान किया तो तब सताधार में अपनेआप झालर बजने लगी! किसीने महंत से पूछा, क्यों? तो कहे, जलाराम ने बीजली की चमक में मोती पिरो लिया! गंगासती ने भी पिरो लिया, फिर गाया इसीसे अभयपद प्राप्त किया। हमें दूसरों से डर है! कारण? हमने कुछ छिपाया है! और दूसरा हमारा प्रलोभन है। देवताओं से हम क्यों डरे? क्योंकि प्रलोभन और भय है।

तो जब हम दंभ करते हैं, पोषण के बदले शोषण करते हैं; हमारे बनाए थोड़े स्वार्थ के लिए छोटे-बड़े, अलग-अलग धर्म के नाम पर जो कुछ संकीर्णता निर्मित करते हैं तब धर्महानि होती है। यह हृदयरूपी धर्म का रोग है। मेरी व्यासपीठ की दृष्टि से धर्महानि का तीसरा कारण गढ्ढे को दरिया कह देने का नेटवर्क! धर्म शाश्वत है। धर्म एक ही होता है। ओशो तो यहां तक कहते हैं, 'एक' शब्द भी निकाल दीजिए। एक के बाद दूसरा आता ही है। विशेषणमुक्त धर्म। धर्म धर्म ही है। यह ग्लानि रोग है। ग्लानि तीन रीतियों से होती है। एक, धर्म के मूल अर्थ को हम स्वार्थ में बदल डालते हैं, यह धर्म ग्लानि है। इसमें सनातन वैदिक धर्म की अपनी जो आदि-अनादि परंपरा है यह उदारता पूरा विश्व जानता है। कुछेक जगह ऐसा भी देखा जाता है कि धर्म का जो मूल मेसेन्जर था उसे हम अपने हेतु के लिए बदल डालते हैं! व्यासपीठ की दृष्टि से धर्म की यह पहली ग्लानि है।

धर्म की दूसरी ग्लानि अपनी तुलना में दूसरों को हीन मानना। इतिहास लें तो बाप, समझिए धर्म शाश्वत है। पर इतिहासविदों से अर्थ पाने की हम कोशिश करे तो कोई-कोई धर्म हजारों वर्ष तो कुछेक को थोड़े वर्ष हुए है! अच्छा सूत्र है कि सभी धर्म समान है। सत्य, प्रेम, करुणा, ये सभी धर्म के समान सूत्र है। उसके अर्थ नहीं बदलने चाहिए। गांधीजी ने कहा, सभी धर्म समान गिने। यह उत्तम विचार है। पर एक दूसरा शब्द भी प्रयुक्त करना है। सभी धर्मो को सन्मान दीजिए। कोई हीन नहीं है। विचारधारा भिन्न हो सकती है। यह सबकी स्वतंत्रता है।

धर्म को हृदय का धर्म कहते हैं तब हानि और ग्लानि यह हृदय की बीमारी है। हमारे शरीर का अंग हृदय को प्रतीक बनाकर हम 'मानस-धर्म' की बात 'मानस' की कथा के आधार पर करते हैं; तब जो हृदय का धर्म है उसे ग्लानि और हानि जैसी विपत्तियां होती है या नलियां सिकुडती है, ब्लोक हो जाती है। तो उसका इलाज कौन करेगा? तब तुलसी ने कहा, उस वक्त समाज को कबीर, नानक, बुद्ध, महावीर की जरूरत पड़ेगी। बुद्ध ने अंगुलिमाल के हृदय की शस्त्रक्रिया की जो मार-मार करता आए और 'बुद्धं शरणं गच्छामि' करता चला जाए! गुरुनानकदेव गाकर यह कार्य करते थे। गुरु बायपास नहीं करता पर डायरेक्ट सर्जरी कर डालता है। अपनी विरक्ति का रक्त हम में चढ़ाकर हमें पुन: धड़कन देते हैं।

मेरा प्रिय शब्द 'सद्गुरु' है। बहुत ही पूज्य शब्द है। पर मैं ज्यादा 'बुद्धपुरुष' शब्द प्रयुक्त करता हूं। बुद्ध और महावीर ने कईयों की हार्टसर्जरी की। कल्पना तो कीजिए! १२०० वर्ष पहले देखिए। जगद्गुरु शंकराचार्य, नानक, कबीर जैसे अध्यात्मजगत के महापुरुषोंने, वैदोंने हृदय के कैसे ओपरेशन किए! हृदयधर्म का निर्वाह किया! धर्म का नाश नहीं होता। तो फिर कृष्ण क्यों ऐसा बोलते हैं कि मैं धर्म की स्थापना करने आया हूं। धर्म शाश्वत है। उसकी क्या स्थापना? उसकी स्थापना नहीं करनी थी। धर्म की हानि और ग्लानि के कारण नलियां ब्लोक हो गई थी। उसमें सुधारकर हृदय का धर्म स्थापित करना था। कृष्ण करुणामय तत्त्व है। युद्ध उनका स्वभाव नहीं है। दूसरों का नाश उनके स्वभाव में नहीं है। उनका स्वभाव, रास, गीत और नृत्य है। आज ५००० वर्षो के बाद भी उनका नाम लेकर हम रास-गरबा खेलते हैं।

इक्किसवीं सदी को हृदयधर्म की जरूरत है। हमारा यही मनोमंथन है। ऐसे धरम को धारण करने के लिए ये पांच पौराणिक पात्र रखे हैं।

जिसे हम धर्म कहते हैं उसका नाश तो नहीं होता पर उसकी हानि अवश्य होती है। धर्म का नकाब पहनकर जब दंभ का पोषण होता है तब धर्महानि होती है। दूसरा, धर्म की हानि कब होती है? धर्म के नाम पर व्यक्ति से लेकर समग्र विश्व का पोषण होना चाहिए उसके बदले शोषण होता है। उस समय धर्म की पताका फहराती नहीं पर फ़डफ़डाती है कि हमारे नाम पर क्या-क्या होता है! तीसरा, हम अपने मनगढन्त, हमारे बनाए हुए नेटवर्क अनुसार हम जिस नये-नये पंथ को धर्म का नाम देते हैं, यह धर्म की तीसरी हानि है।

सिबि दधीच हरिचंद नरेसा।

विश्वामित्र हरिश्चंद्र को कहते हैं, मेरी सवा लाख सुवर्णमहोर दे दे। जो राज्य तू ने दिया वह मेरा हो गया। मेरी पुरानी मांग का क्या? इन तीनों ने काशीनगर की पीठ में बिक्री का प्रयत्न किया है। धर्म हेतु स्पर्धा होती है। माता, पिता और पुत्र के बीच बिक्री हेतु स्पर्धा है। सत्य की खातिर एक ब्राह्मण रोहित को खरीद लेता है। पच्चीस हजार सुवर्ण मुद्राओं में खरीदा। हेतु यह था कि लड़का तेजस्वी है इसे पढ़ाऊंगा, वेद सिखाऊंगा। रोहित माता-पिता के पैर छूता है, 'चिंता मत कीजिए। मैं आप ही का पुत्र हूं। धर्म को धारण करूंगा।' कहा, 'ये तेरे गुरु है। उनकी सेवा करना।' फिर तारा बिक्री हेतु खड़ी हो जाती है। रथ पर बैठकर एक नृत्यांगना आती है, 'यदि इस स्त्री को मैं खरीद लूं तो उसका नृत्य देखकर मैं अधिक धनिक बनूंगी।' ऐसे विचार से ५०,००० सुवर्ण मुद्राएं देकर खरीद ली। अब हरिश्चंद्र को खरीदने कोई तैयार नहीं! सत्य की उलझन यही है कि उसे कोई खरीदने तैयार नहीं है!

झूठइ लेना झूठइ देना।
झूठइ भोजन झूठ चबेना।।

जिस दिन सत्य कसौटी पर चढ़ेगा उस दिन वाहवाह करनेवाले दूर हो जायेंगे। उस समय हृदयधर्म की बहुत जरूरत होती है। आखिर में श्मशानघाट के अधिपति खेमरो मसाणी को आदमी की जरूरत थी। कहता है, 'मैं श्मशानी हूं।' 'कबूल।' और हरिश्चंद्र बिक जाता है। अयोध्या सम्राट लाठी लेकर श्मशान की रक्षा करता है। यहां गणिका शाम होते ही तारा को सजने धजने की आज्ञा देती है। तारा कहती है, 'मैं नृत्य करूंगी पर उस समय मेरे सामने विश्वनाथ की कोई वस्तु भस्म या रुद्राक्ष रखना जिसे मुझे लगे, मैं अपने महादेव के सामने नृत्य करती हूं।'

एक दिन उद्यान में पुष्प लेने गए रोहित की अंतिम कसौटी करते विश्वामित्र अपनी विद्या द्वारा सर्प का रूप धारण कर डंख मारते हैं। बदन नीला पड़ गया है। ब्राह्मण देवता ने रोहित का शव एक लता के नीचे देखा। ब्राह्मण उदार होगा। तारा को खबर करता है। मालकिन के पैरों पड़कर छुट्टी लेकर तारा रोहित के शव को लेकर श्मशान में जाती है। बालक के अग्नि संस्कार करने हेतु लकड़ियां इकठ्ठी की। अग्निदाह देने जाती है इतने में आवाज़ आती है, 'खबरदार, मेरी आज्ञा के बिना दाह मत देना।' तारा पहचान गई। हरिश्चंद्र है। कहती है, 'भगवन्, मैं तारामती। आप मेरे प्रभु है।' 'यह रोहित है। कहा, यह जो कपड़ा डाला है वह मेरे मालिक को देना होता है। मैं अपनी खिचड़ी छोड़ दूंगा पर सवा वार कपड़ा देना पड़ेगा।' कहा, 'यह तो अपना बालक है।' तो कहा, 'यह यहां नहीं चलेगा।'

सहे धरम हित कोटि कलेसा।।

तारामती अपनी साडी चीरकर रोहित को ढंकती है। अग्निदाह के समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों प्रकट होते हैं। विश्वामित्र पर रूठा हुआ श्मशान का देव, 'मुझे तो काल का काल कहते हैं पर तू तो मुझ से भी कठोर है!' विश्वामित्र कहां है? ऋषि होकर ऐसी कसौटी करते हैं? विश्वामित्र को दंड देने की बात होती है। विश्वामित्र कहते है, 'मुझे बचाइए।' कहा, हम नहीं बचा सकते। अब तो तुम्हें वही बचा सकता है, जिसकी तूने कसौटी ली है। उनकी शरण में जा। विश्वामित्र हरिश्चंद्र की शरण में जाते हैं, कहते हैं, 'मुझे क्षमा कीजिए।' हरिश्चंद्र कहते हैं, 'आप मेरे गुरु हैं; ऐसा मत कहिए।' शंकर को लगा। मातृहृदय है; बेटी की ऐसी अवदशा हुई तो शाप देगे ही। तारा से कहा, 'बोलिए।' तारा ने कहा, 'मेरा पति का वचन यह मेरा बचन है।' फिर बालक जीवित होता है। तीनों वरदान मांगने को कहते हैं। तब हरिश्चंद्र मांगते हैं, 'मुझे जनमोजनम तारा जैसी पत्नी और रोहित जैसा पुत्र प्राप्त हो। और विश्वामित्र जैसे गुरु मिले।' पर तारा से मांगने को कहा तो तारा ने कहा, 'जनमोजनम हरिश्चंद्र जैसा पति, रोहित जैसा पुत्र और गुरुरूप में महर्षि कौशिक मिले।' रोहित से पूछा तो कहा, 'तारा जैसी माता, हरिश्चंद्र

जैसा पिता और विश्वामित्र जैसे गुरु मिले।' और भगतबापू दहाड़े -

धन्य राजा-राणी टेक तमारी अने धन्य छे राजकुमार;
काग कहे तारा कुळमां मारे अवधमां लेवो अवतार.

अब थोड़ा कथा-क्रम ले। राम का जन्म हो चुका है। फिर कैकेयी ने पुत्रजन्म दिया। सुमित्रा ने दो पुत्रों को जन्म दिया। नामकरण हुआ। यज्ञोपवित संस्कार हुआ। वशिष्ठ के यहां विद्या प्राप्त हुई। विश्वामित्र आए और अपने कार्य को संपन्न करने राम-लक्ष्मण को ले गए। प्रभु ने रास्ते में ताड़का को परमगति दी। विश्वामित्र ने यज्ञ पूरा किया। फिर अपना कार्य करने धनुषयज्ञ के नाम पर दोनों राजकुमार मुनि के साथ मिथिला जाने निकलते हैं। रास्ते में गौतम आश्रम में अहिल्या पाषाण बन कर पड़ी है। राम ने जिज्ञासा की। भगवान राम अहिल्या का स्वीकार कर उसे समाज में स्थापित करते हैं। प्रभु जनकपुर पहुंचे। जनकराजा ने स्वागत किया है। जनकपुर के 'सुंदरसदन' में निवास दिया है। सायंकाल में भगवान राम-लक्ष्मण जनकपुरी के दर्शन करने निकले हैं। समग्र नगरी उनके रूप में डूब गई। दूसरे दिन राम-लक्ष्मण गुरु की पूजा के लिए पुष्प लेने जनक के बाग में जाते हैं। उसी समय जानकीजी सखियों के साथ गौरीपूजा हेतु मंदिर में आती है। राम और जानकी का मिलन मर्यादा सह उद्यान में होता है। फिर जानकी गौरीपूजा करती है। इतनी सुंदर स्तुति की कि मूर्ति डोलने, हंसने, बोलने लगी! मूर्ति ने आशीर्वाद दिए, 'तेरे मन में जो सांवरा बस गया है वही तुझे पति के रूप में मिलेगा।'

दूसरे दिन धनुषयज्ञ है। हजारों राजा-महाराजा अपने बल का निष्फल प्रयोग कर चूके हैं पर धनुष टूटा नहीं। आखिर में राम खड़े हुए। विश्वामित्र को प्रणाम कर धनुष के पास गए। परिक्रमा की। प्रणाम किया। त्रिभुवन गुरु शिव को याद किया। किसी को पता तक नहीं चला कि धनुष कैसे टूटा? धनुष को मध्यभाग से तोड़ा। जानकीजी प्रभु को माला पहनाती है। परशुराम आते हैं। राम के रहस्यों को सुनकल उन्हें स्मृति होती है। अद्‌भुत स्तुति हुई और जयजयकार होती है।

दूत अयोध्या गए। दशरथजी बारातियों के साथ जनकपुर पहुंचे। दिन बीतने लगे। भगवान राम की बारात निकली है। साक्षात् कामदेव घोड़ा बना है। एक के बाद एक वेदविधि से ब्याह चलता है। वशिष्ठजी ने जनकजी से पूछा, 'आपकी कन्या ऊर्मिला और आपके भाई की दो कन्याएं श्रुतकीर्ति और मांडवी भी अनब्याही है। तो, हमारे तीनों राजकुमार अनब्याहे हैं। चारों को मंडप में लाईए न!' ऊर्मिला लक्ष्मण को, मांडवी भरतजी को, श्रुतकीर्ति शत्रुघ्न को समर्पित हुई। स्नेह के धागे से बारात बंध गई। बिदा की बेला आई। चार डोलियां तैयार हुई। नगर से बिदाई की गई। पुत्रियां पिता का श्वास है तो पिता पुत्रियों का विश्वास है। अवधपुर पहुंचते हैं। बधाईयों का सिलसिला है। दिन बीतने लगे। महेमान बिदा हुए। अंत में विश्वामित्र बिदा हुए। पूरा राजपरिवार रोया है। दशरथजी विश्वामित्र से कहते हैं -

नाथ सकल संपदा तुम्हारी।
मैं सेवकु समेत सुत नारी।।
करब सदा लरिकन्ह पर छोहू।
दरसनु देत रहब मुनि मोहू।।

'हम आपके सेवक है। साधना में हम याद आए तो दर्शन देने पधारियेगा।' विश्वामित्र असंग भाव से बिदा हुए। 'बालकांड' समापन हुआ।

राम का धर्म सत्य है, सीता का धर्म मर्यादा है, भरत का धर्म प्रेम है

हम 'मानस-धरम' की सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा कर रहे हैं। मुझे स्वाभाविक रूप से महर्षि रमण का एक वाक्य याद आता है। महर्षि रमण प्रभु ने कहा था, चरण गति के प्रतीक है। मैं अपने शब्दों में उनके विचार रखता हूं। चरण का धर्म गति है। मस्तक का धर्म मानवी की मति है, बौद्धिकता है, विचार है। पर बीच में रहा एक हृदय। हृदय-धर्म एक स्थिति का नाम है। मुझे पुन: एक बुद्धपुरुष का सपोर्ट मिलता है कि हृदय-धर्म माने एक स्थिति। इसमें काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, ईर्ष्या नहीं रहते। इस कथा में व्यक्तिगतरूप से मैंने अपनी बात रखी हैं। एक ऐसे हृदय की स्थिति में धर्म की बातें हम इस कथा में कर रहे हैं। हृदय की स्थिति माने उपलब्धि की प्रसन्नता नहीं और कुछ न पाने की ग्लानि भी नहीं। वह हृदय की स्थिति है। यही बात अनेक ढंग से कही गई है। हमने सुनी हो, कही हो पर हमारा मनोमंथन यह है कि हम भी उस स्थिति को पाए।

रंतिदेव बलि भूप सुजाना।

हृदयधर्म के उपासक रंतिदेव और बलि दोनों के व्याख्यान से हम परिचित हैं। रंतिदेव के भजन भी बने हैं। आख्यान का सर्जन भी हुआ है रंतिदेव की कसौटी और तपस्या को लेकर। 'महाभारत' कहता है, धर्म का फल दु:ख है। टागोर ने भी

इस बात का समर्थन किया है। जिन्होंने हृदय-धर्म का पक्ष लिया है। 'श्रीमद् भागवत' में 'धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्', ऐसी बात जब कही गई है कि हे पिताजी, आप धर्म को निरंतर भजिए। यदि धर्म तिलक माना जाता है तो तिलक धर्म का परिचय है। हमारी पवित्र परंपरा का परिचय है। उसकी आलोचना नहीं होनी चाहिए। पर हम तिलकरूपी धर्म का निर्वाह निरंतर नहीं कर सकते। पर नित्यधर्म का निर्वाह की बात अपने यहां है। मुझे लगता है कि निरंतर हृदय के धर्म की बात होनी चाहिए। धर्म निर्वाह में सातत्यपूर्ण निर्वाह होना चाहिए। उसीका नाम धर्म है। इसका हमें पता भी न चले! श्वास हंमेशा चलता है पर यहां किसको कभी निंद आ जाय! डोक्टर त्रिवेदी साहब उम्र हो जाये पर भी काफी स्वस्थ है। दो मिनट दें तो डेढ़ मिनट में पूरा कर दे! जागरूक है। कोई कहे, अब आप क्षेत्रसंन्यास ले ले तो कैसा लगे? कल्पना कीजिए। कीडनी पेशन्ट की निरंतर सेवा यही उनका क्षेत्रसंन्यास है। मुझे क्षेत्रसंन्यास लेना हो तो? मुझे लेना ही नहीं है। मेरा संन्यास यह है कि मैं व्यासपीठ पर बैठता हूं। अल्लाह महेरबान रहे कि मेरे चित्त में किसी के प्रति द्वेष न हो। यदि हो तो भी मुझे पता नहीं लगना चाहिए। नहीं तो तकलीफ़ हो जाती है।

'धर्मं भजस्व सततं', यह हृदय धर्म के प्रति संकेत है। 'त्यज लोकधर्मान्', लोकधर्म को छोड़े; तो करें क्या? साधु का संग करें। साधु किसे कहें? जिसका साबुन जैसा जीवन हो। स्वयं घिस कर दूसरों का जीवन उजला करे वही साधु है। रंतिदेव और ये सभी हृदयधर्म के उपासक है। काफी उपवास करने के बाद मनचाही भोजनथाली आई तो उसी वक्त भिक्षुक आता है जो भूखा है, तो उसे भोजन दे दिया। फिर सोचा पानी पी ले। इतने में कोई तृषातुर आता है। पानी भी दे दिया! ऐसी परिस्थिति में साक्षात्कार होने पर वरदान मागने को कहा गया। तो कहे, जगत में जितने नर्क है और उसमें पीड़ित जीव है प्रभु, उन्हें मुक्ति कीजिए। उन सबके बदले मैं अकेला ही पीड़ा भूगतू ऐसा वरदान दीजिए। यह रंतिदेव के साथ जुड़ी कथा है। यही तो हृदयधर्म है। कागबापू की कविता बहुत प्रसिद्ध है।

चिरंजिवीओने धरणीना छेड़ा दई देजे।
चणी लेजे काची मढूली अेकलो;
चौद रत्नो मंथननां विष्णुने दई देजे,
शिव थाजे सागरकिनारे अेकलो.

चौदह रत्न विष्णु को दे देना पर तू शंकर होना। मेरी पसंददीदा भगतबापू की दूसरी पंक्ति -

झडपेलुं अमृत अमर करशे,
पण अभय नहीं आपी शकशे.

किसीसे छीना अमृत आपको अमर करेगा पर निर्भय नहीं करेगा। इन देवताओं ने छीनकर अमृत पीया, अमर हो गए पर अभय न हो सके! किसी भी असुर ने साधना लगाई तो इन्द्रासन डोलने लगे! जो अमर करे पर अभय न करे वह अमृत किस कामका?

एक फ़कीर जैसा सर्जक बुद्ध के वचनों का जापानीज़ भाषा में भाषांतर करता है। पैसा दर पैसा मांगकर प्रकाशन हेतु जाता है, अकाल पड़ा। उसे लगा पुस्तक प्रकाशन नहीं करना है; तो अकाल पीड़ितों को पूरी रकम दे दी! पर उसकी इच्छा है कि बुद्ध के ये वचन अमर रहे, मुद्रित रहे। फिर से भीख मांगी। प्रकाशन हेतु तैयार हुआ। फिर से विपत्ति आई और वह रकम दे दी! तीसरी बार पैसे इकठ्ठे किए। प्रकाशन हेतु प्रेस में जाता है। किताब छपती है। उसने पुस्तक में लिखा, 'यह इस पुस्तक की तीसरी आवृत्ति है।' यह है हृदयधर्म। जिसके हृदय में संवेदना भरी है वही धर्म है।

दूसरे बलि-भूप; प्रभु ने वामनरूप धारण किया। प्रभु किसी गृहस्थ के छोटे चबूतरे पर संध्या करने बैठे। गृहस्थ ने कहा, तू यहां संध्या करने बैठा है? फिर प्रभु को लगा कि संध्या के लिए अपनी जगह हो तो कोई

विघ्न न डाले। फिर बलि का यज्ञ; वहां जाते हैं। ब्रह्मचारी को देखकर बलि बहुत प्रसन्न होता है, 'क्या सेवा करूं?' तब कहा, 'मुझे तीन चरण की पृथ्वी दो।' बलि को लगा, उम्र के साथ बुद्धि भी छोटी है! मेरे पास जो मागा होता वो मैं दे देता! जब संकल्प करता है तब शुक्राचार्य की बात आती है। शुक्राचार्य बलि के गुरु है। वे पहचान गए और संकल्प जल में पैठकर दर्भ से एक आंख फोड डाली! कहा, एक ही दृष्टि रखिए महाराज! यह मानव-स्वभाव भी है। यूं तो गुरु मनुष्य ही है। यद्यपि गुरु को मनुष्य मानने की मना है। मनुष्य को भी गुरु नहीं मानना है। गुरुतत्त्व कुछ अलग ही है। इस तत्त्व को जाग्रत मनुष्यों ने गुरुतत्त्वरूप दिया है। मेघाणी ने सुंदर लिखा -

घण रे बोलो ने अेरण सांभळे.
बंधुडो बोले ने बेनड सांभळे.

'रामचरित मानस' की चौपाई में लिखा है -

एक बार चुनि कुसुम सुहाए।
निज कर भूषन राम बनाए।।
सीतहि पहिराए प्रभु सादर।
बैठे फटिक सिला पर सुंदर।।

प्रसन्नचित्त; मर्यादा का लोप बिलकुल नहीं। रामजी अपने हाथ से फूलों की वेणी बनाकर जानकी का शृंगार करते हैं। अतिशय सुंदर चैतसिक अवस्था पर प्रभु सुंदर रूप से बैठे हैं। इन्द्रपुत्र जयंत घूमने निकला है। उसने देखा कि राम सीता का शृंगार कर रहे हैं। उसे शंका गई कि यह ब्रह्म है! परीक्षा लेने हेतु कौअे का रूप धारण किया। किसीने तुलसी से पूछा, आपने इन्द्रपुत्र को कौआ क्यों बनाया? कहा, दूसरों के प्रसन्न दाम्पत्य में हस्तक्षेप करे वे कौए ही बने, हंस नहीं हो सकते! जयंत ने कौए का रूप धारण कर जानकीजी के चरण में चोंच मारी तो खून निकला। भगवान ने देखा। जिस तिनके से प्रभु माला बनाते थे उसीका बाण बनाकर कौए के पीछे फेंका। जयंत भाग निकला! जहां-जहां जाय, वहां-वहां प्रभु का बाण पीछे-पीछे आए! इन्द्र के पास गया। इन्द्र ने राम के द्रोही को रखने से इन्कार कर दरवाजा बंद कर दिया। ब्रह्मा के पास गया, वहां भी इन्कार मिला। कोई न बचा सका पर रास्ते में नारदजी मिल गए। संत का मिलन होने से बाण वहीं रुक गया। साधु का प्रताप था। नारद को दया आई। क्या हुआ, बता। कहा, मेरी भूल हुई। फिर तू कहां गया? पिता के पास। अपराध दूसरे का और क्षमा मागने किसी दूसरे के पास जाता है? हम भी यही करते हैं! मानव अपराध करे, पहुंचे हरिद्वार! वस्तु जहां गुम हो गई हो वहीं से मिलती है। संत ने समझाया, तू फिर से जानकी के चरणों में जा। क्षमा माग ले। वह सीता के चरणों में जा पहुंचा है। जानकीजी ने उसे प्रभु के चरणों में धर दिया है। यह जीव जिस दिन भक्ति की शरण में जायगा तब भक्ति ही उसे हरि के चरणों में पहुंचा देगी। भगवान को लगा, उसे थोड़ा दंड तो देना पड़ेगा, नहीं तो सब यूं ही करते रहेंगे, जो तिनके का बाण था उससे जयंत की आंख फोड़ डाली! यह द्वैत तेरी आंख में है इसीसे तुझे द्वेष जागा है। अब तू एक ही दृष्टि रखना। ऐसा ही बलि के प्रसंग में शुक्राचार्य का हुआ।

जाके प्रिय न राम-बैदेही
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।।

जिसे सत्य, प्रेम प्रिय नहीं; जो करुणा का उपासक नहीं, वह हमारे चाहे जितना निकट हो उससे आप दूर रहे। फिर तुलसी ने दृष्टांत दिए हैं।

तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी।।

विभीषण ने उसके भाई को छोड़ दिया। भरत ने अपनी माँ का त्याग किया। बलि ने गुरु का त्याग किया। क्योंकि वे समर्पण में बाधक थे। फिर संकल्प हुआ। पृथ्वी भगवान को तीन कदम देती है। भगवान ने दो कदम में ही समग्र ब्रह्मांड नाप लिया। तीसरा बाकी रहा, कहां

रखूं? फिर बलि ने कहा, आपका तीसरा कदम मेरे सिर पर रखिए, जिससे मुझे समर्पणभाव का अहंकार न हो। फिर बलि पाताल में गया। भगवान उसके रक्षक रूप में रहते हैं। संवेदना के धर्म के दृष्टांत तुलसी ने पौराणिक पात्रों में बताए हैं। तो, धर्म के खातिर इन लोगों ने काफी क्लेश और संकट खहे हैं। इस दुनिया में भजन कर लेना हो और प्रसन्नता पानी हो तो सभी के साथ प्रामाणिक डिस्टन्स रखिए। किसी शास्त्र के पास या किसी हृदय के धर्म के पास बैठे रहिए। कथा के प्रवाह में 'अयोध्याकांड' में भगवान राम का बनबास होता है। राम चित्रकूटवासी हुए। रामविरह में अवधपति ने प्राणत्याग किए। भरतजी ने पितृक्रिया कर कहा, 'मैं राज्य का स्वीकार नहीं करूंगा। मैं पद का नहीं, पादुका का आदमी हूं। मैं सत्ता का नहीं, सत् का आदमी हूं।' इन वक्तव्यों से अयोध्या बंध गई। भरत पूरी अयोध्या के साथ चित्रकूट गए हैं। मिथिला से जनक भी जनकपुरी लेकर आए हैं। जनकपुरी और अयोध्या दोनों इकठ्ठी हुई। वहां एक तीसरी प्रेमपुरी भी निर्मित हुई। काफी चर्चाएं हुई। धर्म संवाद हुए। भरत की एक चौपाई सीखने जैसी है। आखिर में राम से कहते हैं, जो कुछ आप निर्णय करो पर ठाकुर, एक बिनती है, आपका चित्त प्रसन्न रहना चाहिए।

जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।
करुना सागर कीजिअ सोई।।

और प्रभु ने ऐसा किया -

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं।
सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।।

पादुका अर्पित की है। यह पादुका करुणारूपी द्रव्यों से बनी है। हम पादुका रखते हो उसे श्रद्धेय की करुणा समझिए। यह लकड़ी की नहीं पर करुणाभाव का प्रतीक है। भरत बिदा होते हैं। दोनों समाज अयोध्या पहुंचते हैं। जनकराज अयोध्या की व्यवस्था कर जनकपुर जाते हैं। रामकथा सत्य, प्रेम और करुणा का संगम है।

पादुका सिंहासनस्थ की है। भरतजी फिर वशिष्ठजी के पास गए हैं, 'भगवन्, आप आज्ञा दीजिए तो मैं अयोध्या में न रहूं। भवन में नहीं पर वन में थोड़ी दूरी पर नंदिग्राम में एक कुटिया बनाकर रहूं। मेरा हरि वन में रहे तो मैं भवन में नहीं जी सकता।' वशिष्ठजी ने कहा, 'हम जो कहते हैं वे धर्म की बातें होती है। पर आज जो तुम कहते हो वह धर्म का सार है। मेरी ओर से आशीर्वाद है। पर माँ कौशल्या की स्वीकृति लेना। उन्हें जरासी भी ठेस लगी तो तेरी रामभक्ति सफल नहीं होगी।' भरत माँ कौशल्या के पास जाते हैं। साथ में शत्रुघ्न है। प्रणाम किए। माँ ने भरत से कहा, 'बोल भाई, क्या बात है?' भरत बोले, 'माँ, मेरा जन्म तुझे दुःख देने हेतु हुआ है! यदि जन्मा न होता तो कैकेयी मेरे लिए राज्य न मांगती। राम बन को न गए होते। मेरे पिता की मृत्यु भी न हुई होती। एक थोड़ा और दुःख दूं? माँ, नंदिग्राम में वल्कल वस्त्र पहनकर रहूं?' कौशल्या को लगा यदि दबाव डालूंगी, हा नहीं कहूंगी तो शायद भरत भी मेरे हाथ में नहीं रहेंगे। मैं राम को क्या जवाब दूंगी? कहा, 'तेरा मन प्रसन्न रहे तो नंदिग्राम जाओ।' शत्रुघ्न का धर्म मौन है। भरत का धर्म प्रेम है। सीता का धर्म मर्यादा है। सहनशक्ति है। माँ ने देखा, शत्रुघ्न शिथिल हो गया है। उसके पास जाकर बोली, 'भाई, धैर्य रख। बड़े कुल में जन्म लिया है तो सहन करना पड़ेगा।' भरत नंदिग्राम में रहने लगे। 'अयोध्याकांड' पूरा हुआ।

'अरण्यकांड' में भगवान चित्रकूट से प्रस्थान करते हैं। आश्रमों से होते हुए प्रभु पंचवटी मे आते हैं। यहां लक्ष्मणजी को उपदेश देते हैं। शूर्पणखा दंडित होती है। खर-दूषण की चौदह हजार की सेना को निर्वाण दिया। शूर्पणखा ने रावण को उत्तेजित किया। रावण मारीच को लेकर सीता के अपहरण की योजना करता है। जानकी का अपहरण हुआ। जटायु शहीद हुआ। रावण सीता को अशोकवन में सुरक्षित रखता है। राम-लक्ष्मण सीता की खोज करते-करते जटायु से मिले। बात सुनी। पितातुल्य आदर देकर जटायु का अग्निसंस्कार किया। फिर प्रभु आगे बढ़े। कबंध का उद्धार किया। फिर शबरी के आश्रम में गए। वहां नवधा भक्ति की चर्चा की। भगवान पंपासरोवर आए। नारदजी मिले। 'अरण्यकांड' पूरा हुआ।

'किष्किन्धाकांड' के आरंभ में प्रभु आगे बढ़े। हनुमानजी से मिलन हुआ। उनके माध्यम से सुग्रीव और राम से मैत्री हुई। वाली निर्वाण प्राप्त हुआ। सुग्रीव राजा बने। अंगद युवराज बना है। चातुर्मास का वर्णन हुआ है। भगवान पर्वत पर चातुर्मास करते हैं। चार माह के बाद सुग्रीव को सावधान किया गया। जानकी की शोध का अभियान शुरू हुआ। हनुमानजी ने प्रणाम किए। प्रभु ने मुद्रिका दी है। 'रामायण' में कौन पात्रों ने किसको क्या दिया वह विचारणीय है। जानकी की खोज के लिए दक्षिण यात्रा शुरू हुई है। खबर मिली, सीता अशोकवन में है। समुद्र का उल्लंघन कौन करे? सबने अपने सामर्थ्य की सीमा बताई। अंत में हनुमानजी ही कर सकते हैं, ऐसा सबने कहा। हनुमानजी तैयार हुए। 'किष्किन्धाकांड' समाप्त हुआ। 'सुन्दरकांड' का आरंभ हुआ।

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई।
सहि दुख कंद मूल फल खाई।।

श्री हनुमानजी समुद्र का उल्लंघन करते हैं। कई विघ्न आते हैं। यह भक्ति तक पहुंचने में विघ्न माने गए हैं। हनुमानजी लंका में प्रवेश करते हैं। एक-एक मंदिर में गए। पर सभी जगह भोग देखे! हनुमानजी को लगा जिस मंदिर में भोग वहां भक्ति नहीं हो सकती। एक मकान देखा। उसमें भगवान का मंदिर अलग ही था। तुलसी का क्यारा था। हनुमानजी को लगा यहां कोई वैष्णव रहता है। हनुमानजी को लगा, लंका तो राक्षसों की नगरी है। इसमें सज्जन कहां से आया? बत्तीस दांतों के बीच जीभ है। जीभ संत है। दांत दुर्जन है। जीभ मिलाने का तो दांत काटने का काम करते हैं। जीभ रसना है तो दांत आक्रमक है। संत सरल है। दांत गिरते हैं, जीभ नहीं। संत शाश्वत रहते हैं, दुर्जन गिरते हैं।

विभीषण और हनुमानजी का मिलन होता है। उन्होंने कहा, सीताजी इस जगह पर है। हनुमानजी वहां पहुंचे। जीवन में समस्या से पहले समाधान आ चुका होता है। रावण सीताजी को मनाने आए इससे पहले हनुमानजी आ पहुंचे हैं। हनुमान माने समाधान, रावण माने समस्या। पर हम स्पष्ट देख नहीं पाते! समाधान

जीवन में समस्या आने से पहले समाधान आ चुका होता है। रावण सीताजी को मनाने आए इससे पहले हनुमान आ गए। हनुमान माने समाधान, रावण माने समस्या; पर हम ऊपर नहीं देखते! इस संसारमें ईश्वर यदि अन्न की व्यवस्था न करे तो उसे भूख देने का भी अधिकार नहीं है। ईश्वर पानी की व्यवस्था न करे तो उसे प्यास देने का अधिकार नहीं है। उसी तरह वह समाधान न दे तो उसे समस्या देने का भी अधिकार नहीं है। पर हमारी मानव-मायावी प्रकृति इधर-उधर ताक-झांक करने पर विवश करती है कि यहां से समाधान मिले! समाधान तो हनुमानजी का रूप लेकर ऊपर बैठा ही है।

ऊपर बैठा ही है। इस जगत में भूख देनेवाला ईश्वर है तो अन्न देनेवाला भी वही है। ईश्वर पानी की व्यवस्था न करे तो प्यास देने का अधिकार भी उसे नहीं है। ईश्वर पहले समाधान न रखे तो उसे समस्या देने का भी अधिकार नहीं है। पर हमारी मानव-मायावी प्रकृति इधर-उधर ताक-झांक करने की प्रवृत्ति करवाती है कि क्या यहां से समाधान मिलेगा? समाधान तो हनुमानजी के रूप में ऊपर बैठा है। एक ही मिनिट ऊपर देखकर बोलना, 'हे हरि, हे हरि।' रावण गया। हनुमानजी प्रकट होते हैं। जानकी आशीर्वाद देती है। फल खाए। अक्षय को मारा। राक्षस उन्हें लंकेश दरबार में ले गए। रावण की सभा में चर्चा हुई। विभीषण ने कहा, दूत को मृत्युदंड नहीं होता। रावण ने बात का स्वीकार किया। पूंछ जलाने का तय हुआ। हनुमानजी पूरी लंका जलाते हैं। हनुमानजी माँ से चूड़ामणि निशानीरूप में ले आते हैं। सभी राम से मिलते हैं। अभियान शुरू हुआ। लंका से विभीषण निष्कासित हुआ। राम ने अपनाया। विभीषण ने उपाय बताया। समुद्र मार्ग दे तो बलप्रयोग ना करे। तीन दिन बीते पर समुद्र ने जवाब नहीं दिया। फिर प्रभु ने नकली रोष किया। ब्राह्मण के रूप में समुद्र शरण में आता है। सेतुनिर्माण का उपाय बताता है। प्रभु ने कहा, सेतु बांधना यह तो अवतारकार्य है। स्वीकार किया। 'सुन्दरकांड' पूरा हुआ।

'लंकाकांड' के आरंभ में उत्तम जमीन देखने के बाद रामेश्वर स्थापना का विचार किया। ऋषिमुनि आए हैं। भगवान रामेश्वर की स्थापना हुई। राम का ईश्वर रामेश्वर। समाज जुड़े वही राम का ईश्वर-रामेश्वर। सभी जुड़ जाए राजा-प्रजा, मज़हब जुड़ जाय। यही प्रभु को इष्ट है। सेना ने प्रस्थान किया। सुमेर पर मुकाम किया। रावण को समाचार मिले। दूसरे दिन सुबह अंगद को दूत

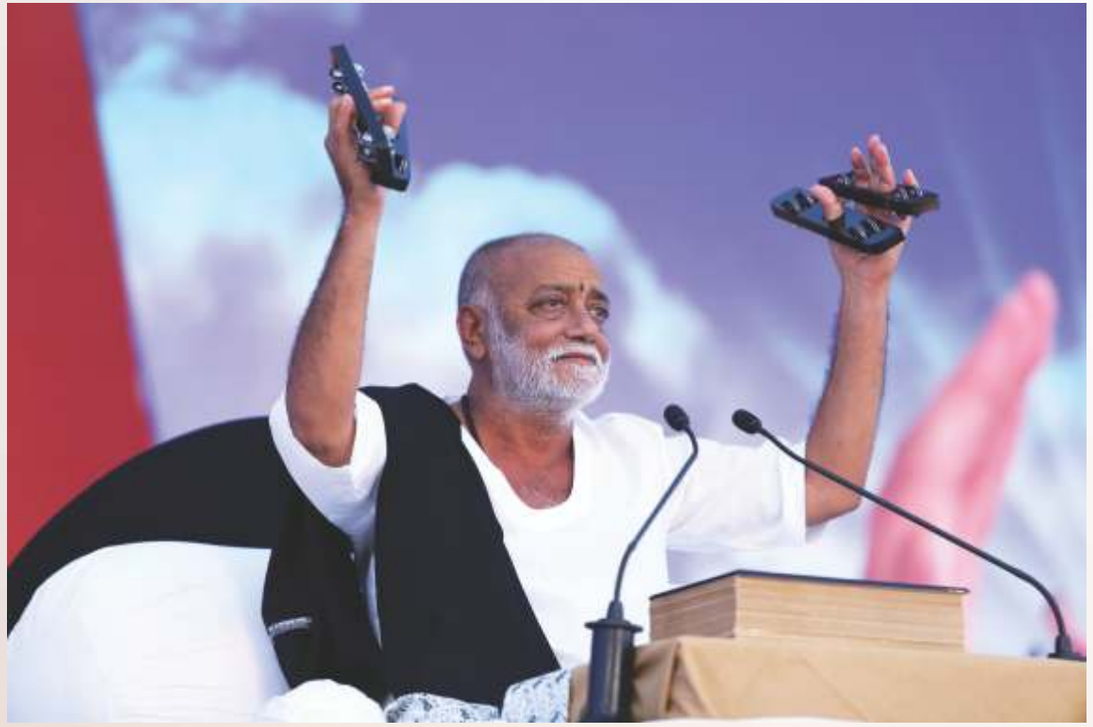

बनाकर भेजा गया। वह जाता है पर संधि नहीं हुई। युद्ध अनिवार्य हुआ। एक के बाद एक राक्षस वीरगति प्राप्त करते हैं। अंत में ठाकोरजी ने रावण निर्वाण हेतु इकत्तीस बाण चढ़ाए। भयानक युद्ध हुआ। इकत्तीसवां बाण छूटा। दस मस्तक, बीस भुजाएं और इकत्तीसवां नाभि में और रावण पहली और आखिर बार बोला, 'राम!' रावण के चेहरे का तेज राम के चेहरे में समा गया। मंदोदरी ने स्तुति की। रावण का अग्निसंस्कार हुआ। विभीषण का राज्याभिषेक हुआ। जानकीजी को खबर भेजी गई। पुष्पक तैयार होता है। मुख्य-मुख्य सखाओं को पुष्पक में बिठाकर प्रभु यात्रा करते हैं। रास्ते में रामेश्वर के दर्शन हुए। ऋषिमुनियों से मिलते हैं। शृंगबेरपुर में प्रभु ऊतरते हैं। प्रभु केवट को आलिंगन देते हैं। हनुमानजी अयोध्या में खबर देने जाते हैं।

'उत्तरकांड' का आरंभ होता है। हनुमानजी ने भरतजी को समाचार दिए। राम भगवान सकुशल पहुंचते हैं। भरतजी की आंखें नम होती है। पूरे अयोध्यामें बात फैल गई। प्रभु का वायुयान सरजू तट पर ऊतरता है। भगवान ने जन्मभूमि को प्रणाम कर शस्त्र नीचे रख दिए। गुरु चरण में दंडवत् किए। अब शस्त्र की जरूरत नहीं है। अब शस्त्रवेत्ता के चरण पकड़ने हैं। भरत-राम मिलाप हुआ। कोई तय न कर पाया कि किसने बनवास लिया था! प्रभु को लगा सभी मिलने को उत्सुक है, तो अमित रूप धारण किया। प्रभु सबसे भावानुरूप मिले। भगवान भवन में पधारते हैं। सर्वप्रथम कैकेयी-भवन में जाते हैं। कैकेयी के मन को हल्का किया। सुमित्रा-कौशल्या से मिले। प्रेम और करुणा छा गई है।

दिव्य सिंहासन राम के पास आया है, राम सिंहासन के पास नहीं गए। वस्त्रालंकार धारण किए है। भूमि को प्रणाम किया। सूर्य, माता, जनता, गुरु को प्रणाम किया। सखाओं को आदर दिया। भगवान महादेव का स्मरण कर राघव गद्दी पर बैठे हैं। साथ में जानकीजी बिराजमान है। विश्व को प्रथम रामराज्य देते कहते हैं -

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा।
पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।

वशिष्ठजी ने पहला राजतिलक किया। त्रिभुवन में जयजयकार हुआ है। छ माह बीत गए। सिवा हनुमानजी, सभी मित्र बिदा हुए। समय मर्यादा पूरी होते सीताजी ने दो पुत्रों को जन्म दिया है। उसी तरह तीनों भाईयों के यहां दो-दो पुत्रजन्म हुए हैं।

यों तुलसीने रघुकुल के वारिस की बात की और कथा को पूर्णविराम देते हैं। तुलसी विवाद, दुर्विवाद की बातें नहीं लिखते। फिर कागभुशुंडिजी की कथा है। याज्ञवल्क्य महाराज ने भरद्वाजजी के पास त्रिवेणी तट पर प्रयाग में कथाविराम किया या नहीं यह रहस्य ही है। भगवान महादेव ने कथा को विराम दिया। फिर पूज्यपाद तुलसीजी ने अपने मन को और साधु-संतों को कथा सुनाई और विराम दिया और कहा, जिसके नाम से अधम से अधम जीव भवसागर पार हो गए; हे जीव, तू उस राम को गा, राम को सुन और राम का स्मरण कर।

इन चारों आचार्यों की आशीर्वादमय छाया में बैठकर मेरी यह व्यासपीठ अहमदाबाद रिवरफ्रन्ट पर नौ दिनों से मुखर थी अपने परमहेतु के लिए, उस कथा को मैं भी विराम देने जा रहा हूं तब व्यासपीठ पर से प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। जोईसर परिवार निमित्त मात्र बना। आप सबने उदारता से सहयोग दिया। मैं अपनी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। हनुमानजी को बिदा दूं इससे पहले नौ दिवसीय रामकथा 'मानस-धर्म' का जो सुक्रीत इकठ्ठा हुआ है, वो हम सब मिलकर कीडनी पेशन्ट को समर्पित करते हैं। 'सर्वे सन्तु निरामया।' बाप, खुश रहिए, खुश रहिए, खुश रहिए।

किसको पत्थर फ़ेंके केसर, कौन पराया है।
शिशमहल में हर एक चेहरा मुझ–सा लगता है।

– कैसर

या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तनहाइयों के साथ।
लाज़िम नहीं कि हर कोई हो कामयाब ही,
जीना भी सीख लीजिये नाकामियों के साथ।

– दीक्षित दनकौरी

मज़ा देखा मियां सच बोलने का?
जिधर तू है उधर कोई नहीं!

– नवाज़ देवबन्दी

चरागों के बदले मकां जल रहा है।
नया है जमाना नयी रोशनी है।

– खुमार बाराबंकवी

ना कोई गुरु ना कोई चेला।
मेले में अकेला अकेले में मेला।

– मजबूरसाहब

जिस जगह जाके इन्सान छोटा लगे,
उस बुलंदी पे जाना नहीं चाहिए।

– ज़हूर आलम

शब्दसेवन पंचधूनी तपने जैसा है

'मेघाणी अवॉर्ड' (२०१३) अर्पण समारोह में मोरारिबापू का प्रेरक उद्‌बोधन

लोगों के मेघाणी, लोगों के लिए मेघाणी और लोक तथा श्लोक दोनों द्वारा स्थापित मेघाणी; उनके नाम से सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट के मेघाणी केन्द्र द्वारा एनायत अवॉर्ड जिनके चरणों में धर कर हमने जिस विद्यापुरुष की वंदना की ऐसे पूज्य जानीबापा (कनुभाई जानी) इस कार्यक्रम के यजमान, सौराष्ट्र युनिवर्सिटी के कुलपतिश्री, गांधीनगर से आए हुए अपने परमस्नेही भाग्येशभाई, वसुबहन, कुलसचिवश्री, संयोजकश्री अंबादानभाई, 'सौराष्ट्र का स्वातंत्र्य संघर्ष' अभ्यासपूर्ण ग्रन्थ के संपादक श्री आदरणीय विष्णुभाई पंड्या, 'लोकगुर्जरी' के संपादक आदरणीय बलवंतभाई, हर्षदभाई और आप सब वरिष्ठ जन।

हर कार्यक्रम में मेरे लिए एक समस्या होती है। शुरूआत से सब कहते हैं, हम बापू को सुनने आए हैं। पर मेरे लिए समय रहने दे तो मैं सुनाऊं न? लेकिन मैं वक्ता होने के साथ अच्छा और सच्चा श्रोता भी हूं। वक्ता से भी ज्यादा श्रवणभक्ति करने ऐसे कार्यक्रम में आता हूं, इसका मुझे आनंद है।

जानीबापा ने मेघाणी का वेग, व्याप और वाणी की त्रिवेणी निर्मित की। उनसे तो हम ओर भी ज्यादा ले सकते हैं। मुझे बहुत आनंद हुआ। सौराष्ट्र युनिवर्सिटी को एक छूट दे दूं। मैंने वचन दिया है कि मेरी अनुकूलता रहेगी तो ऐसे कार्यक्रम में श्रोता बनकर आऊंगा। पर आपको अनुकूलता न हो तो मुझे आमंत्रण न भी दे सके इस बात का खटका मन में न रखना। हमें बहुत वास्तविक रहना चाहिए। ऐसा मत सोचना कि 'बापू! बुरा मान जायेंगे।' बुरा माने वह बापू ही नहीं होते! विशेषत: अध्यात्मक्षेत्र के बापू तो होते ही नहीं! वेडछी का आदिवासी गांधीबापू से मिलने आए बारडोली में। वल्लभभाई और बापू दोनों बारडोली में। जुगतरामचाचा की मुलाकात करनी थी। वो आया पर जुगतरामचाचा वेडछी चले गए। वो वेडछी गया। किसी ने कहा, जुगतराम बापा तो निकल गए। बेचारा लौट पड़ा। तीन बार दौड़ा। फिर बापू से मिलने की बात हुई। बापू ने कहा, पहले खाना खिलाइए, फिर ले आइए। फिर बापू से मिलने गया तो सबसे पहले सरदार बैठे थे। उनका हास्यप्रिय स्वभाव था। उसने पूछा, इसमें बापू कौन है? सरदार ने कहा, 'मैं।' आदिवासी ने कहा, 'मैं मैं' करनेवाले बापू हो ही नहीं सकते!

हुं करुं हुं करुं ए ज अज्ञानता,
शकटनो भार ज्यम श्वान ताणे.

तो, कोई बोझ मत रखिए। मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं तो आऊंगा ही। मेघाणी एवोर्ड द्वारा एक योग्य पुरुष की वंदना की गई इसका मुझे आनंद है। 'महाभारत' में भगवान श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा कि यह भीष्मज्योत बुझ जाय इससे पहले कुछ जानना हो तो उनसे प्रश्न पूछ ले। बहुत विशाल प्रसंग है। युधिष्ठिर भीष्म के पास जाते हैं। कई विषयों के प्रश्न पूछे गए हैं। भीष्मदादा ने जवाब दिए हैं। प्रश्न था, दादा, हमें किसकी पूजा करनी चाहिए? 'अवोर्ड' तो अंग्रेजी शब्द है। अर्थ जो भी होता हो पर हम अवोर्ड द्वारा पूजा करने इकठ्ठे हुए हैं। पूजा किसकी करे? इसका दस्तावेजी सबूत पांच हजार वर्ष पहले किसीने दिया है। इस प्रश्न की तो बहुत विस्तृत चर्चा हुई है। भीष्म ने वास्तविक रीति से जवाब दिए हैं। भीष्म कहते हैं, भक्त, मुनि, ज्ञानी पूजा योग्य है। भाष्यकारों ने कहा, चमत्कार करते हो वहां नहीं जाना है। जिनकी पूजा से स्वार्थपूर्ति होती हो वहां भी नहीं जाना है। ये सब डरावने प्रदेश हैं। जहां ढोंग पोषित हो वहां नहीं जाना है। जहां केवल आडंबर द्वारा लोगों को प्रभावित करने का नेटवर्क आयोजित हो वहां नहीं जाना है। जानीबापा को देखता हूं तो लगता है, समिति ने योग्य निर्णय किया कि हम उनकी वंदना करे। बापा ने भले चाहे कैसा ही वेश पहना हो, यह ऋषि नहीं तो क्या है? बिना दाढी का ऋषि है। ऋषि के लिए गणवेश अनिवार्य नहीं है। स्त्री या पुरुष होना ऋषि के लिए अनिवार्य नहीं है। ऋषि जाति से पर है। इसीलिए अपने देश का जगद्गुरु आदि शंकर यों कहता है कि 'न मे जाति भेद:।'

इस व्यक्ति को देखता हूं, कई बार दर्शन हुए; प्रणाम करने का अवसर मिला। उन्हें देखता हूं तब लगता है, 'महाभारत' में भीष्म ने दिया जवाब कितना सार्थक है! हम किसकी वंदना करेंगे? अभी तो किसके सन्मुख बैठना यह प्रश्न है! लेकिन ना, ना। अभी भी बैठने योग्य ठिकाने हैं। सौराष्ट्र युनिवर्सिटी आया हूं तो एक बैठने योग्य ठिकाना डोलरकाका को याद कर लूं। इनके तीर्थ में आया हूं। स्मरण कर लूं। लोकसाहित्य के लिए अद्भुत कार्य किया! नींव उन्होंने डाली। दूसरी व्यक्ति आदरणीय रूपालाजी ने सौराष्ट्र युनिवर्सिटी को यह केन्द्र प्राप्त हो

इसके लिए बेहद प्रयत्न किए। उन्होंने अपने आदरणीय मुख्यमंत्रीश्री से कहा। उन्होंने स्वीकार किया। अत: मैं रूपालाजी को धन्यवाद देता हूं। मुख्यमंत्रीश्री का भी स्मरण करता हूं।

तो किसकी पूजा करे? भीष्म कहते हैं, तपोधनी पूज्य है। यह तप नहीं तो क्या है? साहब, जिनके पास तपस्या के सिवा कोई धन नहीं है। तपना-सहना है।

इस राज़ को क्या जाने साहिल को तमासाई ।
हम डूब के जाने हैं सागर तेरी गहराई ।।

किनारे पर छप्पक छैय्या करनेवालों को क्या पता मझधार क्या है? ये सब पार लगे हैं। अभी कहा गया कि सात वर्षीय पुत्र-पुत्री के स्मारक है लेकिन कुछ लिखावट नहीं है! क्या कभी-कभी नहीं लगता कि छोटी-छोटी गलतियां सदियों तक सताया करेगी?

ये जब्र भी देखा है तारीख की नज़रों ने,
लम्हों ने खता की थी, सदियों ने सज़ा पाई ।

इतिहास की दृष्टि से देखें तो यें जुल्म है। उपेन्द्रभाई ने एक बार कहा था, जिसे धूल की एलर्जी नहीं होती है वही पूरा उतर जायगा। यह बापा तपोधनी है। उन्होंने कच्छ के एक आदमी का दोहा कहा था, मेघा तो केवल पानी दे पर मेघाणी तो वाणी और पानी दोनों देता है। तपोधनी कौन है? बैसाख माह में पांच प्रकार की धूनी लगाकर बैठे वही तपोधनी है। वंदन साहब! शब्दसेवन पंचधूनी अग्नि है। मेघाणी ने तप किया। उन्होंने पंचधूनी की साधना की। यह बापा आज भी वही करते हैं। शब्दसेवन पंचधनी तपने जैसा है।

आज सुबह मैं अमरेली में था। प्रणव के यहां चाय-पानी हुआ। प्रणव ने अच्छी बात बताई; मोती भी है, धागा भी है, पानबाई भी है पर मेरे भाग्य में बीजली की चमक नहीं है। अत: मोती पिरोया नहीं जाता! पर यह शब्दोत्सव है, शब्द की मेहफ़िल है तब प्रणव को याद करूं।

शब्द तो शीलवंत साधु, वारे वारे हुं नमुं,
शीखवे जे जीववाना साहसो, गंगासती.
भाग्यमां तो एक पण वीजळीनो चमकारो नथी,
शुं करुं मोतीनुं ए समजावशो, गंगासती.

यह तपोधनी जिसने शब्दसेवन किया। उसकी अग्नि; शब्द अग्नि है। साहब, वह जलाता है! महोब्बत से जले वो शब्द का सच्चा सेवक है। प्रसन्नता से जले। भीष्म ने कहा, 'युधिष्ठिर, तपोधनी हो उसकी पूजा करना।'

दूसरा, वेदविद् की पूजा करनी चाहिए। वेदविद् माने हम अपने वेदों का गौरव ले सके। वेदविद् का अर्थ मेरी जिम्मेदारी से करूं तो समाज में जानने योग्य जो वस्तु हो उसे जानता हो तो वह वेदविद् है, वह पूज्य है। लोकविद्या हो, श्लोकविद्या हो, कोई भी विद्या हो; जानने जैसी वस्तु जान लेनी चाहिए। स्वीकार होना चाहिए। आज बड़े से बड़ा प्रश्न है कि समाज में कई लोग सच बोलते हैं पर वे दूसरों का सत्य स्वीकार नहीं करते! दूसरों के सत्य का स्वीकार करने का धैर्य उनमें नहीं है। तो हम किस सत्य के उपासक है? वेदविद्। ऐसे कार्यक्रम में पूरी युनिवर्सिटी के विद्यार्थी शामिल होंगे तब मुझे ज्यादा आनंद मिलेगा। हम सब तो है ही, लेकिन विद्यार्थी भी होने चाहिए। एक ऐसे समंदर की लहर आनी चाहिए। 'जानने जैसी विद्या को जानने की तैयारी करते हैं, प्रसन्नता से स्वीकार करते हैं। युधिष्ठिर, ऐसे की पूजा करनी।' ऐसा वाक्य भीष्म ने कहा है।

मैं अभी कह रहा था किसी भी सार्वजनिक कार्यक्रम में सरकारी अधिकारी, पुलिस, संस्था के ट्रस्टी, लाभार्थी, श्रोता होते हैं पर कोई भी सार्वजनिक प्रसंग हो तब उस नगर का शब्दोपासक, संगीत का उपासक,

कला, चित्र का उपासक, भारतीय सभ्यता की विधविध विद्या के उपासक भी होना चाहिए। उन्हें आमंत्रण जाना ही चाहिए। प्रथम नहीं तो दूसरी पंक्ति में उनका स्थान होना ही चाहिए। यदि वे न आए तो उनकी इच्छा। साहब, विद्यापुरुष न हो तो कार्यक्रम साधारण-सा लगता है! मैं तो यहां तक कहूं कि एक नट अच्छी तरह से कूदता हो तो उसेभी आमंत्रण दीजिए। उसकी उछलकूद व्यर्थ नहीं पर लक्ष्य पर है। इनका प्रोक्षण करना चाहिए। हम उन्हें आदर से निमंत्रित करे। तो, वेदविद् पूज्य है।

तीसरा लक्षण बताया, वह कभी आत्मश्लाघा नहीं करता। युधिष्ठिर, उसकी पूजा करना। 'कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्।' गांडीव और शूरवीरता का युधिष्ठिर ने अपमान किया तो अर्जुन युधिष्ठिर को मारने तैयार हो गया। तब कृष्ण ने कहा, तू एक काम कर। बड़े भाई को गाली दे दे तो उसकी मृत्यु हो जाएगी। कृष्ण ने रास्ता निकाला। फिर अर्जुन कहता है, मैं आत्महत्या करूंगा क्योंकि भाई को गाली दी है। तब कृष्ण ने अच्छा कहा, इसमें तुझे आत्महत्या करने की जरूरत नहीं है। तू अपने मुंह से अपनी प्रशंसा शुरू कर दे तो समझ कि तू मर गया! कृष्ण कैसा मार्ग निकालते हैं! जिसके अंतर में आत्मश्लाघा के लिए जरा भी रुचि नहीं है, ऐसे मानव की पूजा युधिष्ठिर, तू करना। बापा को क्या है? हमने काग अवोर्ड के अवसर इन्हें आमंत्रित किया। इसी ऋजुता, सरलता से पधारे थे।

चौथा सूत्र, जिसको सत्ता या पद का प्रलोभन न हो उसकी पूजा करना। क्या कनुबापा हमें कहने आए कि मुझे अवोर्ड दीजिए? हमें खोजना पड़े? मिल जाय वह हमारा सद्भाग्य। 'ढूंढो ढूंढो रे साजना', इसे आप पूजना, यों भीष्मदादा कहते हैं।

सूत्र तो कई बताए हैं। मैं पांच कहकर पूरा करूं। पांचवां सूत्र, बगैर हेतु केवल स्नेह के लिए, समाज के लिए कुछ सर्जन किया है उसकी पूजा करनी चाहिए। शब्द मेरे हैं, मूल विचार वहां का है, 'हेतु रहित अनुराग रामपद।' बगैर हेतु, केवल स्नेह के लिए, स्वान्तः सुखाय। मेघाणी ने कितना कुछ दिया है! पूरा जीवन कनुबापा ने दिया। शब्दोपासना में कितने वर्ष दिए! बगैर हेतु, केवल स्नेह के लिए कुछ सर्जन करते हैं।

अंग्रेजी मीडियम में पढ़ता एक छोटा-सा बालक कैसा है? बुझी केन्डल को रोशन करने की जरूरत है। बर्नर तो गर्म है। अपने यहां चेतनाओं के बर्नर बहुत गर्म है। उसे वक्त पे 'ज्योत से ज्योत जगादे।' तो छः साल के बालक ने मुझसे पूछा, बापू, यह मकान बनता है। पैसे भी लिये होंगे पर बापू, यह सब भूल जाय। इन्होंने एक नया मकान बनाया है तो क्या इन्हें नमन नहीं करना चाहिए? उसके मन में यह है कि जहां कहीं नवसर्जन होता है उसकी वंदना करनी चाहिए। महापुरुषों ने हमें कितना-कितना दिया है! बिना हेतु के केवल स्नेह से समाज के लिए जो सर्जन करे, कुछ दे, उसकी पूजा करना, ऐसा भीष्म बोले हैं।

मेघाणीभाई के जो लक्षण थे ऐसे तपोधनी, वेदविद्, सत्ता और प्रतिष्ठा की परवाह नहीं है, ऐसे साधु विद्याधर स्नेह के लिए जिन्होंने यज्ञ शुरू किया हो, ऐसे एक अपने वरिष्ठजन को मेघाणी अवोर्ड अर्पण करके आज की संध्या आरती की है। शयनआरती तो नहीं कहूंगा। काहे का शयन? ऐसे कार्यक्रम में आता हूं तो मेरी संध्या हो जाती है।

(सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट (गुजरात) द्वारा कनुभाई जानी को अर्पित 'मेघाणी अवॉर्ड' (२०१३) समारोह में प्रस्तुत वक्तव्यः ता. २६-१२-२०१३)

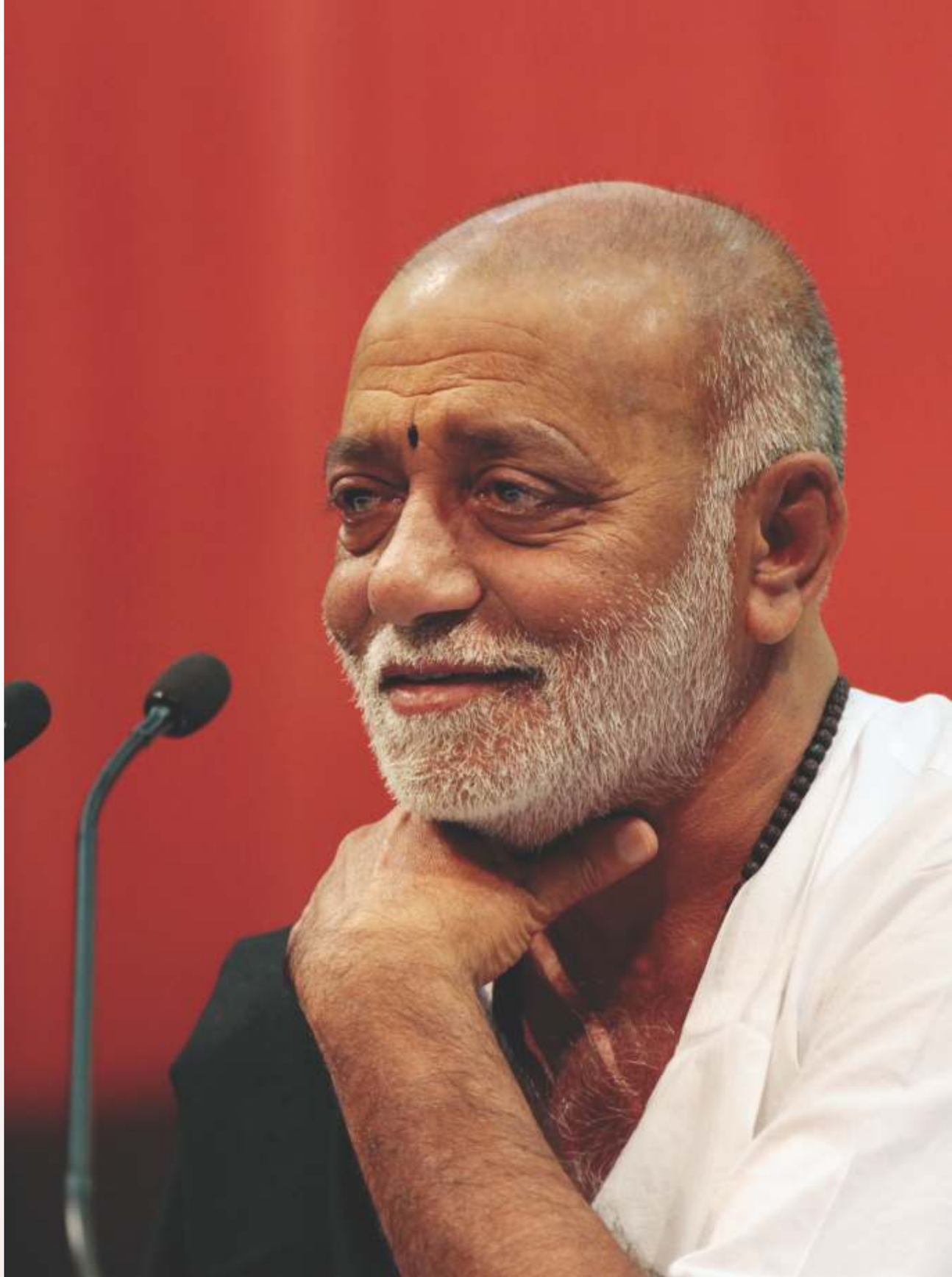

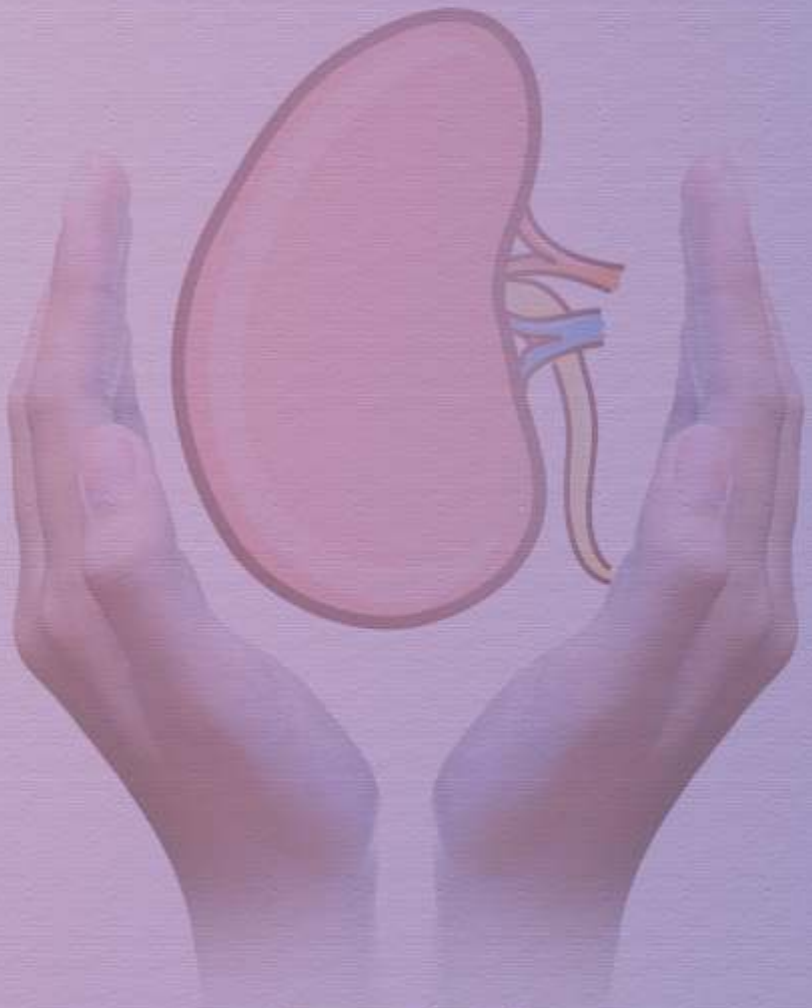

सेवा परमो धर्म:।

॥ जय सीयाराम ॥